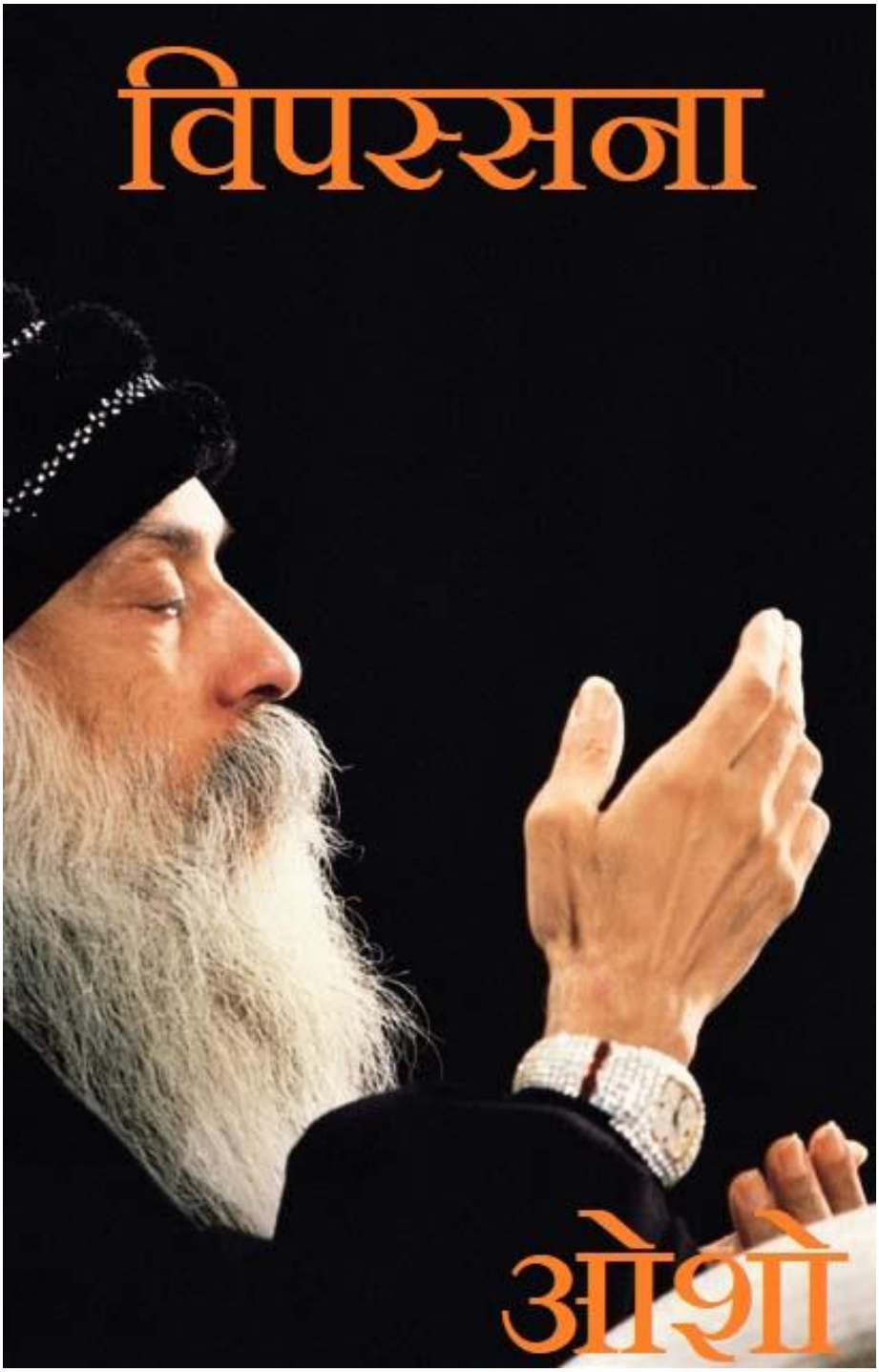
विपस्सना
ओशो

विषय अनुक्रम

1 विपस्सना : सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान विधि 3
2 बीमारी में भी विपस्सना संभव 6
3 आत्मज्ञान का सुगम उपाय : विपस्सना 8
4 समस्त जीवन का सूत्र- श्वास 11
5 विपस्सना द्वारा परम संभोग 14
6 श्वास-प्रश्वास को होशपूर्वक देखना से होता क्या है? 16
7 सर्वाधिक लोगों को ज्ञानोपलब्धि : विपस्सना से 18
8 स्वधर्म के अनुसार ध्यान विधि जरूरी 20
9 रुचि के अनुकूल रास्ता : विपस्सना सबके लिए नहीं 22
10 मछली बाजार में विपस्सना साधना 25
11 बुद्ध के दो ध्यान : विपस्सना और चक्रमण 28
12 मंत्र की बजाए श्वास के प्रति जागरण सरल 30
13 विपस्सना ही नानक का अजपा है 32
14 विपस्सना और सूफी नृत्य का संगम 33
15 सक्रिय-ध्यान : खेत-सफाई, विपस्सना : बीज-बुवाई 35
16 समथ समाधि और विपस्सना समाधि 39
17 श्वास देखते-देखते शांति व साक्षी 42
18 श्वास के कर्ता नहीं, साक्षी बनो 44
19 श्वास के साक्षी बनो, अंतर्ध्वनि सुनो 46
20 श्वास लयबद्ध, आनंदपूर्ण हो 48
21 श्वास-श्वास आनंद से ओतप्रोत हो 51
22 श्वास-श्वास में भगवान का भोग 53
23 श्वास, शारीरिक सजगता और मंत्र 56
24 श्वास में सुरति लगाओ 61
25 ध्यान प्रयोग हेतु निर्देश 68
26 विपस्सना ध्यान (संगीत व निर्देश सहित) 71
27 सहज सांस की ध्यान विधि 75
28 अनापानसतीयोग एवं अहं-विसर्जन 77
29 सावधानियाँः महत्त्वपूर्ण विधि, खतरनाक भी! 84
30 उदासीन नहीं, नाचती-गाती विपस्सना 94
31 योग और तंत्र में श्वास का प्रयोग एवं अन्य सवाल 98

1 विपस्सना : सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान विधि

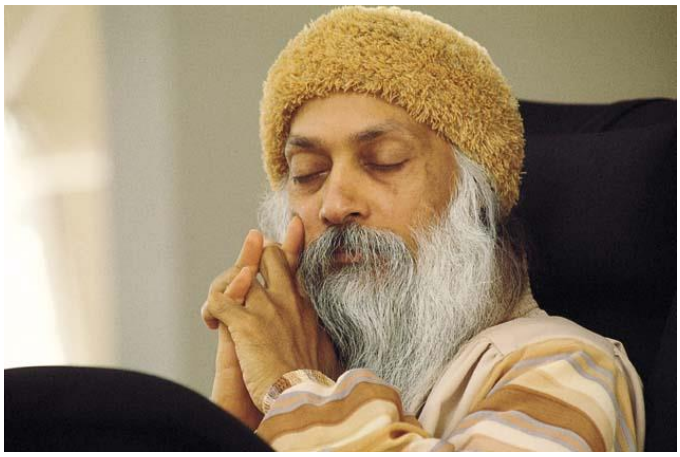

प्रश्नः प्यारे प्रभु! कल प्रथम बार मैंने शिविर में विपस्सना ध्यान किया। इतनी उड़ान अनुभव हुई! कृपया विपस्सना के बारे में और प्रकाश डालें।

ईश्वर समर्पण! विपस्सना मनुष्य-जाति के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान-प्रयोग है। जितने व्यक्ति विपस्सना से बुद्धत्व को उपलब्ध हुए उतने किसी और विधि से कभी नहीं। विपस्सना अपूर्व है! विपस्सना शब्द का अर्थ होता है : देखना, लौटकर देखना।

बुद्ध कहते थे : इहि पस्सिको, आओ और देखो! बुद्ध किसी धारणा का आग्रह नहीं रखते। बुद्ध के मार्ग पर चलने के लिए ईश्वर को मानना न मानना, आत्मा को मानना न मानना आवश्यक नहीं है। बुद्ध का धर्म अकेला धर्म है इस पृथ्वी पर जिसमें मान्यता, पूर्वाग्रह, विश्वास इत्यादि की कोई भी आवश्यकता नहीं है। बुद्ध का धर्म अकेला वैज्ञानिक धर्म है।

बुद्ध कहते : आओ और देख लो। मानने की जरूरत नहीं है। देखो, फिर मान लेना। और जिसने देख लिया, उसे मानना थोड़े ही पड़ता है; मान ही लेना पड़ता है। और बुद्ध के देखने की जो प्रक्रिया थी, दिखाने की जो प्रक्रिया थी, उसका नाम है विपस्सना।

विपस्सना बड़ा सीधा-सरल प्रयोग है। अपनी आती-जाती श्वास के प्रति साक्षीभाव। श्वास जीवन है। श्वास से ही तुम्हारी आत्मा और तुम्हारी देह जुड़ी है। श्वास सेतु है। इस पार देह है, उस पार चैतन्य है, मध्य में श्वास है। यदि तुम श्वास को ठीक से देखते रहो, तो अनिवार्य रूपेण, अपरिहार्य रूप से, शरीर से तुम भिन्न अपने को जानोगे। श्वास को देखने के लिए जरूरी हो जायेगा कि तुम अपनी आत्मचेतना में स्थिर हो जाओ।

बुद्ध नहीं कहते कि आत्मा को मानो। लेकिन श्वास को देखने का और कोई उपाय ही नहीं है। जो श्वास को देखेगा, वह श्वास से भिन्न हो गया, और जो श्वास से भिन्न हो गया वह शरीर से तो भिन्न हो ही गया। क्योंकि शरीर सबसे दूर है; उसके बाद श्वास है; उसके बाद तुम हो। अगर तुमने श्वास को देखा तो श्वास के देखने में शरीर से तो तुम अनिवार्य रूपेण छूट गए। शरीर से छूटो, श्वास से छूटो, तो शाश्वत का दर्शन होता है। उस दर्शन में ही उड़ान है, ऊंचाई है, उसकी ही गहराई है। बाकी न तो कोई ऊंचाइयां हैं जगत में, न कोई गहराइयां हैं जगत में। बाकी तो व्यर्थ की आपाधापी है।

फिर, श्वास अनेक अर्थों में महत्वपूर्ण है। यह तो तुमने देखा होगा, क्रोध में श्वास एक ढंग से चलती है, करुणा में दूसरे ढंग से। दौड़ते हो, एक ढंग से चलती है; आहिस्ता चलते हो, दूसरे ढंग से चलती है। चित्त ज्वरग्रस्त होता है, एक ढंग से चलती है; तनाव से भरा होता है, एक ढंग से चलती है; और चित्त शांत होता है, मौन होता है, तो दूसरे ढंग से चलती है।

श्वास भावों से जुड़ी है। भाव को बदलो, श्वास बदल जाती है। श्वास को बदल लो, भाव बदल जाते हैं। जरा कोशिश करना। क्रोध आये, मगर श्वास को डोलने मत देना। श्वास को थिर रखना, शांत रखना। श्वास का संगीत अखंड रखना। श्वास का छंद न टूटे। फिर तुम क्रोध न कर पाओगे। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे, करना भी चाहोगे तो क्रोध न कर पाओगे। क्रोध उठेगा भी तो भी गिर-गिर जायेगा। क्रोध के होने के लिए जरूरी है कि श्वास आंदोलित हो जाये। श्वास आंदोलित हो तो भीतर का केंद्र डगमगाता है। नहीं तो क्रोध देह पर ही रहेगा। देह पर आये क्रोध का कुछ अर्थ नहीं है, जब तक कि चेतना उससे आंदोलित न हो। चेतना आंदोलित हो, तो जुड़ गये।

फिर इससे उल्टा भी सच है : भावों को बदलो, श्वास बदल जाती है। तुम कभी बैठे हो सुबह उगते सूरज को देखते नदीतट पर। भाव शांत हैं। कोई तरंगें नहीं चित्त में। उगते सूरज के साथ तुम लवलीन हो। लौटकर देखना, श्वास का क्या हुआ? श्वास बड़ी शांत हो गयी। श्वास में एक रस हो गया, एक स्वाद... छंद बंध गया! श्वास संगीतपूर्ण हो गयी।

विपस्सना का अर्थ है शांत बैठकर, श्वास को बिना बदले... ख्याल रखना प्राणायाम और विपस्सना में यही भेद है। प्राणायाम में श्वास को बदलने की चेष्टा की जाती है, विपस्सना में श्वास जैसी है वैसी ही देखने की आकांक्षा है। जैसी है--ऊबड़-खाबड़ है, अच्छी है, बुरी है, तेज है, शांत है, दौड़ती है, भागती है, ठहरी है, जैसी है!

बुद्ध कहते हैं, तुम अगर चेष्टा करके श्वास को किसी तरह नियोजित करोगे, तो चेष्टा से कभी भी महत फल नहीं होता। चेष्टा तुम्हारी है, तुम ही छोटे हो; तुम्हारी चेष्टा तुमसे बड़ी नहीं हो सकती। तुम्हारे हाथ छोटे हैं; तुम्हारे हाथ की जहां-जहां छाप होगी, वहां-वहां छोटापन होगा।

इसलिए बुद्ध ने यह नहीं कहा है कि श्वास को तुम बदलो। बुद्ध ने प्राणायाम का समर्थन नहीं किया है। बुद्ध ने तो कहा : तुम तो बैठ जाओ, श्वास तो चल ही रही है; जैसी चल रही है बस बैठकर देखते रहो। जैसे राह के किनारे बैठकर कोई राह चलते यात्रियों को देखें, कि नदीतट पर बैठकर नदी की बहती धार को देखे। तुम क्या करोगे? आई एक बड़ी तरंग तो देखोगे और नहीं आई तरंग तो देखोगे। राह पर निकली कारें, बसें, तो देखोगे; नहीं निकलीं, तो देखोगे। गाय-भैंस निकलीं, तो देखोगे। जो भी है, जैसा है, उसको वैसा ही देखते रहो। जरा भी उसे बदलने की आकांक्षा आरोपित न करो। बस शांत बैठ कर श्वास को देखते रहो। देखते-देखते ही श्वास और शांत हो जाती है। क्योंकि देखने में ही शांति है।

और निर्चुनाव--बिना चुने देखने में बड़ी शांति है। अपने करने का कोई प्रश्न ही न रहा। जैसा है ठीक है। जैसा है शुभ है। जो भी गुजर रहा है आंख के सामने से, हमारा उससे कुछ लेना-देना नहीं है। तो उद्विग्न होने का कोई सवाल नहीं, आसक्त होने की कोई बात नहीं। जो भी विचार गुजर रहे हैं, निष्पक्ष देख रहे हो। श्वास की तरंग धीमे-धीमे शांत होने लगेगी। श्वास भीतर आती है, अनुभव करो स्पर्श... नासापुटों में। श्वास भीतर गयी, फेफड़े फैले; अनुभव करो फेफड़ों का फैलना। फिर क्षण-भर सब रुक गया... अनुभव करो उस रुके हुए क्षण को। फिर श्वास बाहर चली, फेफड़े सिकुड़े, अनुभव करो उस सिकुड़ने को। फिर नासापुटों से श्वास बाहर गयी। अनुभव करो उत्तप्त श्वास नासापुटों से बाहर जाती। फिर क्षण-भर सब ठहर गया, फिर नयी श्वास आयी।

यह पड़ाव है। श्वास का भीतर आना, क्षण-भर श्वास का भीतर ठहरना, फिर श्वास का बाहर जाना, क्षण-भर फिर श्वास का बाहर ठहरना, फिर नयी श्वास का आवागमन, यह वर्तुल है--वर्तुल को चुपचाप देखते रहो। करने की कोई भी बात नहीं, बस देखो। यही विपस्सना का अर्थ है।

क्या होगा इस देखने से? इस देखने से अपूर्व होता है। इसके देखते-देखते ही चित्त के सारे रोग तिरोहित हो जाते हैं। इसके देखते-देखते ही, मैं देह नहीं हूं, इसकी प्रत्यक्ष प्रतीति हो जाती है। इसके देखते-देखते ही, मैं मन नहीं हूं, इसका स्पष्ट अनुभव हो जाता है। और अंतिम अनुभव होता है कि मैं श्वास भी नहीं हूं। फिर मैं कौन हूं? फिर उसका कोई उत्तर तुम दे न पाओगे। जान तो लोगे, मगर गूंगे का गुड़ हो जायेगा। वही है उड़ान। पहचान तो लोगे कि मैं कौन हूं, मगर अब बोल न पाओगे। अब अबोल हो जायेगा। अब मौन हो जाओगे। गुनगुनाओगे भीतर-भीतर, मीठा-मीठा स्वाद लोगे, नाचोगे मस्त होकर, बांसुरी बजाओगे; पर कह न पाओगे।

ईश्वर समर्पण, ठीक ही हुआ। कहा तुमने : इतनी उड़ान अनुभव हुई! अब विपस्सना के सूत्र को पकड़ लो। अब इसी सूत्र के सहारे चल पड़ो। और विपस्सना की सुविधा यह है कि कहीं भी कर सकते हो। किसी को कानों-कान पता भी न चले। बस में बैठे, ट्रेन में सफर करते, कार में यात्रा करते, राह के किनारे, दुकान पर, बाजार में, घर में, बिस्तर पर लेटे... किसी को पता भी न चले! क्योंकि न तो कोई मंत्र का उच्चार करना है, न कोई शरीर का विशेष आसन चुनना है। धीरे-धीरे... इतनी सुगम और सरल बात है और इतनी भीतर की है, कि कहीं भी कर ले सकते हो। और जितनी ज्यादा विपस्सना तुम्हारे जीवन में फैलती जाये उतने ही एक दिन बुद्ध के इस अदभुत आमंत्रण को समझोगे : इहि पस्सिको! आओ और देख लो!

बुद्ध कहते हैं : ईश्वर को मानना मत, क्योंकि शास्त्र कहते हैं; मानना तभी जब देख लो। बुद्ध कहते हैं : इसलिए भी मत मानना कि मैं कहता हूं। मान लो तो चूक जाओगे। देखना, दर्शन करना। और दर्शन ही मुक्तिदायी है। मान्यताएं हिंदू बना देती हैं, मुसलमान बना देती हैं, ईसाई बना देती हैं, जैन बना देती हैं, बौद्ध बना देती हैं; दर्शन तुम्हें परमात्मा के साथ एक कर देता है। फिर तुम न हिंदू हो, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध; फिर तुम परमात्ममय हो। और वही अनुभव पाना है। वही अनुभव पाने योग्य है।

-मरौ हे जोगी मरौ-12

2 बीमारी में भी विपस्सना संभव

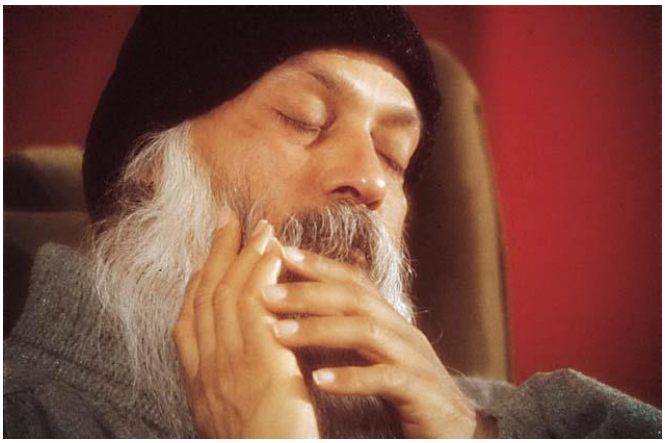

प्रश्नः शरीर ही स्वस्थ नहीं है तो शरीर के पार, फिर मन के पार कैसे जा सकूंगी? प्रभु, मैं बहुत निराश हो गयी हूं, कुछ मार्गदर्शन करें।

समाधि! शरीर तो सदा ही अस्वस्थ है। शरीर तो कभी स्वस्थ हो ही नहीं सकता। इसीलिए तो ज्ञानियों ने शरीर को व्याधि कहा है। ऐसा नहीं है कि जो अस्पताल में भर्ती हैं उन्हीं के शरीर को व्याधि कहा है, शरीर-मात्र को व्याधि कहा है। व्याधि इसलिए कहा है कि शरीर तो जन्मा है और मरेगा।

तो शरीर तो जन्म के बाद मर ही रहा है। जन्म के बाद कुछ और तुमने किया क्या है सिवाय मरने के? जन्म के बाद मरना शुरू हो गया। एक दिन का बच्चा एक दिन मर चुका। एक श्वास जिस बच्चे ने ली है जमीन पर मां के गर्भ से निकलकर, उसकी उतनी मौत हो गयी, उतनी मौत चल चुका। जन्म के बाद तो मृत्यु ही होनी है।

और जिसकी मृत्यु होनी है, उसका कैसा स्वास्थ्य? स्वास्थ्य तो सिर्फ अमृत का होता है। स्वस्थ तो जो होता है वह अमृत को जान लेता है। शरीर तो मरणधर्मा है। मरण तो उसके रोएं-रोएं में छिपा पड़ा है, देर-अबेर की बात है। शरीर तो मरघट है।

इसलिए चिंता न करो। शरीर स्वस्थ है कि अस्वस्थ, इससे तुम्हारे ध्यान का कोई खास संबंध नहीं। क्या समाधि, तू सोचती है जिनके शरीर स्वस्थ हैं, वे ध्यान को उपलब्ध हो रहे हैं? हालतें तो अक्सर उल्टी हैं। जिनके शरीर स्वस्थ हैं वे तो ध्यान की शायद सोचेंगे भी नहीं। वे कहेंगे : देखेंगे बुढ़ापे में, अभी क्या जल्दी पड़ी है? अभी तो चार दिन की जिंदगी मिली है; लूट लो, खा लो, मजा कर लो, मौज कर लो। आयेगी मौत, तब देखेंगे; जिनकी आती होगी, वे करें ध्यान। अभी तो हम मजबूत हैं, अभी तो हम जवान हैं।

शरीर के स्वस्थ होने से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। लेकिन शरीर स्वस्थ कभी होता ही नहीं। स्वस्थ से स्वस्थ शरीर भी बस स्वस्थ दिखायी पड़ता है। क्षण-भर में सब टूट जाये, क्षण-भर में सब बिखर जाये। शरीर का स्वास्थ्य तो ऐसा ही है जैसे पानी की थिरता; जरा हवा का झोंका आयेगा, सब अथिर हो जायेगा। लेकिन इससे कुछ बाधा नहीं पड़ती।

सच तो यह है, यदि मृत्यु न होती तो कोई ध्यान करता ही न। बुद्ध को भी मृत्यु को देखकर ही स्मरण आया था कि मैं जीवन कब तक गंवाऊंगा? उसे खोज लूं, जल्दी खोज लूं, जिसकी कोई मृत्यु न होती हो। राह के किनारे देखकर आदमी की लाश को ले जाते, बुद्ध ने अपने सारथी को पूछा था : इसे क्या हो गया? सारथी ने कहा था : यह आदमी मर गया। बुद्ध ने पूछा : क्या मैं भी मर जाऊंगा इसी तरह? सारथी ने कहा : कैसे कहूं, किन शब्दों में कहूं? आप ऐसा प्रश्न उठाते हैं कि मुझे अड़चन में डालते हैं। लेकिन झूठ भी नहीं कह सकता हूं। अभी आप सुंदर हैं, युवा हैं, स्वस्थ हैं, लेकिन मौत तो होगी; मौत सबकी होती है। मौत अपरिहार्य है। उससे कभी कोई बचा नहीं है।

बुद्ध जाते थे महोत्सव में भाग लेने। उन्होंने सारथी को कहा : रथ वापिस लौटा लो। अब महोत्सव में जाने का समय नहीं। सारथी ने कहा : क्या कहते हैं आप! प्रतीक्षा करते होंगे महोत्सव में लोग। आपके ही हाथ उद्घाटन होना है।

बुद्ध ने कहा : हो चुका उद्घाटन। अब मुझे महोत्सव में कोई रस नहीं। मेरे सामने अब एक प्रश्न खड़ा हो गया है कि अगर मौत होनी है तो मौत के पहले मुझे उसे जान लेना जरूरी है, जो अमृत हो। और जब तक अमृत को न जाना तब तक अब चौन नहीं।

उसी रात बुद्ध ने घर छोड़ दिया। उसी रात यात्रा पर निकल गये।

मृत्यु है, इसलिए तो ध्यान की खोज शुरू होती है।

देह अस्वस्थ है, इसे दुर्भाग्य न समझो; इसे सौभाग्य में बदल लो। फिर देह का अस्वस्थ होना बाधा नहीं बनेगा। अभी मैंने विपस्सना की बात कही। देह स्वस्थ हो कि अस्वस्थ, जवान हो कि वृद्ध, सुंदर हो कि कुरूप, स्त्री की हो कि पुरुष की, कोई भेद नहीं पड़ेगा। श्वास तो चल ही रही है न? समाधि, तू इतनी अस्वस्थ तो नहीं कि श्वास न चलती हो? इतनी अस्वस्थ होती तो प्रश्न ही कौन पूछता? तो जा ही चुकी होती! श्वास तो चल ही रही है न, बस इतना ही तो चाहिए, और कुछ चाहिए भी नहीं। इसी श्वास के प्रति जागो; बैठ कर जागो, खड़े होकर जागो, चलते हुए जागो, सोकर-लेटकर जागो--इस श्वास के प्रति जागो। यह तो बीमार से बीमार आदमी भी कर सकता है। यह तो जो अस्पताल में भरती होते हैं उनको भी मैं कहता हूं यही करो!

और सच तो यह है कि दिन-भर की घर की आपाधापी में समय भी नहीं मिलता। कभी अस्पताल में सौभाग्य से कोई महीने-पंद्रह दिन रह जाता है तो ध्यान का समय मिल जाता है। वहां कुछ और करने को भी नहीं। बिस्तर पर लेटे-लेटे और करोगे क्या? श्वास तो देख ही सकते हो न! आती श्वास, जाती श्वास। श्वास पर ध्यान तो आरोपित कर ही सकते हो न। बस उतने से ही हो जायेगा।

तू इसकी चिंता मत कर कि शरीर स्वस्थ नहीं है। न रहने दे शरीर को स्वस्थ, इसी अस्वास्थ्य को वरदान बना लेंगे। यही अभिशाप परम वरदान बन जायेगा। तू विपस्सना में लग।

-मरौ हे जोगी मरौ-12

3 आत्मज्ञान का सुगम उपाय : विपस्सना

प्रश्नः प्यारे भगवान श्री, विपस्सना की साधना में केथार्सिस कब होता है? मैं विपस्सना का अभ्यास करता हूं। मेरा संगीत का कार्यक्षेत्र होश की दिशा में मेरे लिए किस प्रकार सहायक हो सकता है।

विपस्सना सदियों पुरानी पद्धति है ध्यान की। इसकी खोज--किसने इसे खोजा, पता नहीं--अदभुत प्रक्रिया है। स्वयं से परिचित होने का सरलतम उपाय है। विपस्सना शब्द का अर्थ है, चुपचाप बैठकर अपने आपका साक्षी हो जाना। पस्य का अर्थ है, देखना। विपस्सना का अर्थ है, बस चुपचाप भीतर बैठकर देखना। यह श्वास भीतर आयी, वह श्वास बाहर गयी, इसको भी देखना। यह हृदय धड़का, इसको भी देखना। चुपचाप भीतर बैठकर जो भी हो रहा है उसे देखना। और देखते-देखते ही सारी आवाजें विलीन हो जाती हैं और एक महाशून्य तुम्हें घेर लेता है।

बुद्ध ने विपस्सना की प्रक्रिया को सारे जगत में विस्तीर्ण किया। लेकिन एक अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि बुद्ध को ढाई हजार वर्ष हो गए। विपस्सना की पद्धति वही की वही है। लेकिन आदमी की नालायकी वही की वही नहीं है। आदमी नालायकी से और नालायकी की तरफ बढ़ता गया। विपस्सना किसी भी भोले-भाले आदमी के लिए सरल मामला है। लेकिन आधुनिक आदमी भोला-भाला नहीं है। आधुनिक आदमी इतने शोरगुल से भरा है, इतनी बेईमानी से। औरों की तो बात छोड़ दो, अपने साथ भी ईमानदार नहीं है।

मैंने सुना है, एक चोर एकनाथ के साथ तीर्थयात्रा पर गया। एकनाथ तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। उनके सारे शिष्यों का मंडल तीर्थयात्रा पर निकला था। चोर जाहिर था। सारा गांव उसे जानता था। उस चोर ने एकनाथ को कहा कि मुझे भी साथ ले लो। मुझ गरीब को भी बचा लो। मैं भी तुम्हारे साथ सारे तीर्थ हो जाऊं। एकनाथ ने कहा, मुझे कोई ऐतराज नहीं। एक शर्त है। कम से कम तीर्थयात्रा तीन से छः महीने तक चलेगी। इस बीच तुम चोरी नहीं करोगे। उस आदमी ने वायदा किया कि कसम खाता हूं आपकी, चोरी नहीं करूंगा। एकनाथ ने कहा, फिर कोई हर्ज नहीं है, तुम साथ हो लो, लेकिन दूसरी ही रात से गड़बड़ शुरू हो गयी। और गड़बड़ बड़ी अजीब थी। किसी के हाथ की चूड़ियां, किसी दूसरे के हाथ में पहुंच गयीं। किसी की अंगूठी किसी दूसरे के हाथ में चली गयी। किसी के बिस्तर का सामान किसी दूसरे के बिस्तर में चला गया। लोग सुबह उठकर बड़े हैरान, कि मामला क्या है? चीजें मिल जाती थीं। चोरी नहीं होती थी। मगर

आधा दिन इसी खोज में निकल जाता था कि चश्मा कहां है? किसी के रुपए गायब। रुपए कहां हैं? जब तक पचास-साठ आदमियों की एक-एक चीज न खोजी जाए तब तक रुपए ने मिलें, चश्मा न मिले।

एकनाथ ने अंततः दो-तीन दिन बाद, एक रात जागकर बिताई। शक उन्हें हुआ कि मामला उसी चोर का है। और मामला उसी चोर का था। जैसे ही सब सो जाते, वह उठता। और इसका सामान उसके सामान में, उसका सामान किसी और के सामान में। एकनाथ ने उससे कहा, पागल तूने कसम खायी थी, चोरी न करेंगे। उसने कहा, मैंने कसम खायी थी चोरी न करेंगे तो चोरी न करेंगे तो चोरी तो नहीं कर रहा। और मैंने यह तो कभी कसम न खायी थी कि चीजें न बदलेंगे। और तुम्हारी तीर्थयात्रा तो तीन महीने में खत्म हो जाएगी। यह मेरा दिन होता है। और रात भर क्या करूं खाक? और किसी का कुछ बिगाड़ तो नहीं रहा हूं। किसी का एक ढेला तो लिया नहीं।

आदत! चोरी नहीं करनी लेकिन फिर भी हेराफेरी करनी है। थोड़ा रस तो आ ही जाता है। थोड़ा मजा तो आ ही जाता है। दूसरे दिन सुबह बैठकर वही एक आदमी था, जो मजे से देखता था कि कहां क्या हो रहा है।

मैंने सुना है ऐसे चोरों की बाबत भी, जो अपने एक खीसे से चुराकर दूसरे खीसे में चीजों को रख लेते हैं। दिल तो बहल जाता है। बात तो रह जाती है। इज्जत का सवाल है।

इन ढाई हजार वर्षों में मनुष्य के मन में इतने ज्यादा विकृत विचार, इतना दमन, इतने बादल उमड़-घुमड़ गए हैं कि अब विपस्सना सीधी-सीधी करना बहुत मुश्किल है। और तुम पूछते हो, विपस्सना में केथार्सिस कब होती है? विपस्सना में केथार्सिस का कोई स्थान ही नहीं है। क्योंकि जिस समय विपस्सना खोजी गयी थी, केथार्सिस की कोई जरूरत ही न थी। अब अगर कैंसर ही न हो तो कैंसर के इलाज की क्या जरूरत है?

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को विपस्सना में प्रवेश करने के पहले सक्रिय ध्यान का आग्रह करता हूं, ताकि सक्रिय ध्यान में सारा उपद्रव, कूड़ा-कर्कट बाहर फेंक दें। और एक बार फिर निखालिस छोटे बच्चे हो जाएं। फिर विपस्सना शुरू करें। लेकिन अगर तुमने सीधे विपस्सना शुरू की, तो तुम एक खतरा करोगे। वह जो तुम्हारे भीतर इकट्ठा है, वह दबा ही रहेगा। ऊपर-ऊपर तुम शांत दिखायी पड़ने लगोगे और भीतर-भीतर सारी अशांति इकट्ठी होती जाएगी। और वह शांति एक दिन विस्फोट की भांति फूट सकती है। फूटेगी। एक सीमा है, जब तक तुम उसे दबाए रख सकते हो।

विपस्सना सीधी शुरू करने के मैं पक्ष में नहीं हूं। विपस्सना दूसरा चरण है। दो हजार वर्ष पहले पहला चरण था। अब विपस्सना दूसरा चरण है। अब पहला चरण सक्रिय ध्यान है। सक्रिय ध्यान तुम्हें विपस्सना के लिए तैयार करेगा। सक्रिय ध्यान काफी नहीं है, उससे तुम आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो जाओगे। लेकिन सक्रिय ध्यान तुम्हें धोकर--जैसा गंगा में स्नान कर आए हो, ऐसा स्वच्छ कर देगा। उन स्वच्छता के क्षणों में विपस्सना में प्रवेश करना उचित है; अन्यथा खतरा है।

लेकिन बड़ी मुश्किल यह है, हजारों वर्ष बीत जाते हैं, लोग अतीत को ऐसा जोर से पकड़ते हैं कि यह भूल ही जाते हैं कि वह अतीत किन्हीं और तरह लोगों के लिए निर्मित किया गया था, तुम्हारे लिए नहीं। तो विपस्सना के शिक्षक अभी भी विपस्सना सिखा रहे हैं। और उन्हें पता ही नहीं कि इन पच्चीस सौ वर्षों में आदमी पर क्या गुजरी है! तूफान गुजर गए हैं, आंधियां गुजर गयी हैं। आदमी के भीतर इतनी टूट-फूट इकट्ठी हो गयी है, इतना कूड़ा-कर्कट इकट्ठा हो गया है कि पहले उसे साफ कर लेना जरूरी है।

तो मेरी सलाह है, सक्रिय ध्यान को पहला कदम बनाओ। और जब तुम अपने भीतर पाओ कि अब निकालने को कुछ भी नहीं, तब विपस्सना शुरू करो। तो विपस्सना ही तुम्हें आत्मज्ञान की तरफ ले जाएगी।

-कोंपलें फिर फूट आईं-5

4 समस्त जीवन का सूत्र- श्वास

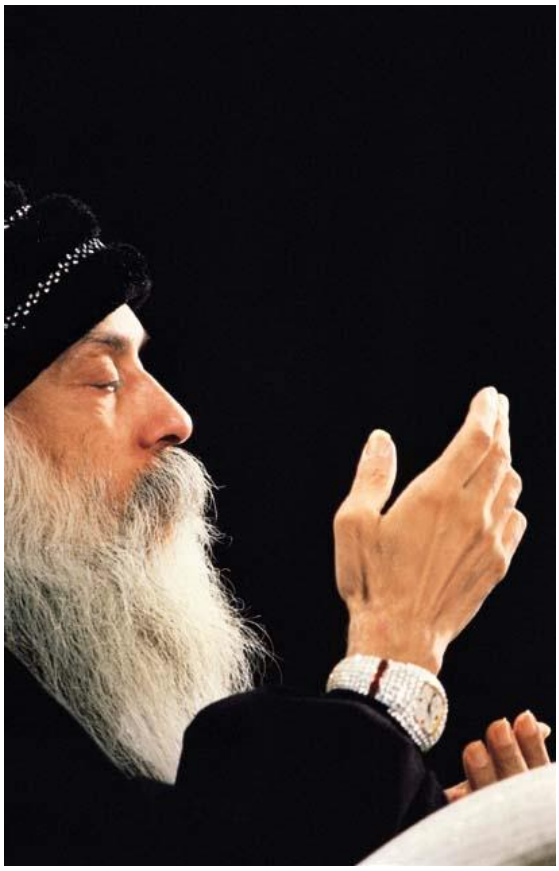

जीवन का जो सूत्र है, वह वही है जो एक छोटे से घास के तिनके में है। वैज्ञानिक उसे कहते हैं, आक्सीडाइजेशन। वे कहते हैं कि छोटा सा तिनका भी हवा से आक्सीजन को पीता है और भीतर जलाता है। उसके जलने से ही जीवन चलता है। जैसे दीया आपका जल रहा हो है। आपने कभी ख्याल किया कि तुफानी हवा चल रही है और दीया जल रहा है, तो यह हो सकता है कि तूफानी हवा में दिया बच जाए, लेकिन बचाने के लिए अगर एक बर्तन आप उस पर ढांक दें, तो जल्दी बुझ जाएगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की आक्सीजन जैसे ही दीया पी लेगा, जला लेगा, फिर मरेगा, फिर बच नहीं सकता। वह दीया पूरे वक्त हवा की आक्सीजन को लेकर जला रहा हैं।

आप भी वहीं कर रहे हैं। पूरे वक्त जो श्वास चल रह रही है, वह आक्सीजन लेने के लिए चल रही है, और आप के भीतर एक अग्नी है जो उस आक्सीजन को जला रही है। इसलिए आपकी श्वास बंद कर दें और प्राण छूट गए। जब आप दिए पर बर्तन ढांक देते हैं, आपने उसकी श्वास बंद कर दी, प्राण छूट गए। एक घास के उपर बर्तन को ढांक दें, आपने उसकी श्वास बंद कर दी। प्राण छूट जाएंगे।

एक खूबसूरत पौधे को घर के भीतर लगा कर रख लें, दो दिन में पाएंगे कि उसका प्राण जाने लगा। क्योंकि उसे जो जीवंत, जो प्रक्रिया थी उसके भीतर विज्ञान के हिसाब से वह इतनी थी कि वह अपने भीतर हवा को ले जाकर उसमें से आक्सीजन जला रहा है। और जब आक्सीजन जल जाती है, तब जो कार्बन बच जाता है उसको बाहर फेंक रहा है। हम भी फेंक रहे है, पूरे वक्त। इसलिए अगर एक भीड़ भरे कमरे में आप सो जाएं और सब तरफ से कमरा बंद हो, रात भर में सारे लोग मर सकतें हैं। क्योंकि अगर कमरे की आक्सीजन चूक जाए और सब कार्बन को फेंकते चले जाएं और फिर मजबूरी में कार्बन ही पीना पड़े, तो आप मर जाएंगे।

चाहे महासूर्य जल रहा हो और एक घास का तिनका जी रहा हो, और चाहे एक बुद्ध जी रहे हो, जीने का नियम एक ही है। सब अपन-अपने पैमाने पर प्राणवायु को जला रहे हैं, विज्ञान के हिसाब से। तो अगर हम यह भी समझे तो भी पता लगेगा कि क्षुद्र से क्षुद्र में और विराट से विराट में एक ही जीवन है।

कुछ वैज्ञानिकों को संदेश है कि पृथ्वी भी श्वास लेती है। पृथ्वी भी श्वास लेती है; रोएं-रोएं, छिद्र-छिद्र से। और इसलिए कोई भी पृथ्वी जीवित नहीं हो सकती अगर उसके पास कम से कम दे सौ मील का वायु का घेरा न हो। यह हमारी पृथ्वी भी, दो सौ मील तक वायु का घेरा है इसके चारों तरफ। इसलिए अब तो वैज्ञानिकों को सूत्र मिल गया है कि जिस ग्रह के पास भी वायु का घेरा है, अगर उसमें कार्बन और आक्सीजन की एक निश्चित मात्रा है, तो वहां जीवन होगा। क्योंकि वह पृथ्वी जीवित है। इसका मतलब हुआ कि कुछ पृथ्वियां जीवित हैं, कुछ पृथ्वियां मृत हैं। लेकिन जो आज मृत है, वह कभी जीवित थी। और आज जो जीवित है, वह कभी मृत हो जाएंगी। इनकी जीवन-प्रक्रिया लंबी है, यह दूसरी बात है कि हम कई बार मरते हैं और जीते हैं। अनेक-अनेक बार। और पृथ्वी जीती रहती है।

पहाड़ भी श्वास लेते हैं। पहाड़ों में भी मुर्दा पहाड़ हैं और जिंदा पहाड़ हैं। जिस पहाड़ी पर हम बैठे हुए हैं, यह एक मरी हुई पहाड़ी है। यह कभी जीवित थी। यह जगत की पुरानी से पुरानी पहाड़ी है। हिमालय इस पहाड़ी के सामने एक बच्चा है। लेकिन हिमालय अभी जीवित है। यह जानकर आप हैरान होंगे कि हिमालय पर भागने का सन्यांसी का आकर्षण गहरे में कुछ और है। हिमालय इस पृथ्वी पर थोड़ से जीवित पर्वतों में से एक है। अभी जीवित है अभी बढ़ रहा है, अभी श्वास ले रहा है। हिमालय रोज बढ़ रहा है। ऊंचा होता जा रहा है। अभी उसमें गति है, 'ग्रोथ' है, बढ़ाव है। जो जीवित होता है, उस पर साधना बहुत आसान हो जाती है। लेकिन साधना की पद्धति पर निर्भर करेगा। साधना की पद्धति पर निर्भर करेंगा कि कौन सा पहाड़? कुछ साधना पद्धतियां ऐसी हैं कि मुर्दा पहाड़ सहयोगी होता है।

जैनों ने जहां-जहां अपने तीर्थ चुने है, वे सब मुर्दा पहाड़ है। जानकर चुने हैं। जैनों कि जो साधना पद्धति है, यह मुर्दा पहाड़ पर सहयोगी है। इसलिए जैनों ने हिमालय बिल्कुल छोड़ दिया। हैरानी कि बात मालूम पड़ती है। हिमालय जैसा पर्वत जिस देश में हो, उसमें एक धर्म उसको बिल्कुल छोड़ दे, कहीं उससे संपर्क ही नहीं बनाए, जरुर कुछ गहरा कारण होगा। कारण है। हिमालय जिंदा पहाड़ है। जैनों की जो पद्धति है, वह गहरे में तप भर निर्भर है। जितनी मुर्दा जगह हो, तप उतना गहन हो जाता है।

हिंदुओं की जो जीवन-पद्धति है, वह जीवन को घटाने की तरफ नहीं है, बढ़ाने की तरफ है। दोनो एक अंत पर पहुंच जाते हैं। अगर जीवन बिल्कुल घट कर शून्य हो जाए, तो आदमी विराट में प्रवेश कर जाता है। या जीवन बढ़कर बिल्कुल पूर्ण हो जाए, तो भी आदमी विराट में प्रवेश कर जाता है। तो हिंदुओं ने जितने तीर्थ चुने है, जितने स्थान बनाए साधना के, वह जीवित पहाड़ चुने हैं। और अगर जीवित पहाड़ न मिला तो नदी चुनी है। यह मजे की बात है कि कोई मुर्दा नदी नहीं होती। सब नदियां जिंदा होती हैं। क्योंकि मुर्दा नदी का मतलब होता है कि सिर्फ नदी का रास्ता रह जाता है। क्योंकि मुर्दा नदी का मतलब होता है कि सिर्फ नदी का रास्ता रह जाता है, पानी तो सूख जाता है। मुर्दा नदी का मतलब होता है कि वह खो गई, वह नहीं है।

जहां जीवन मिल सकता था, हिंदुओं ने वहां, वहां-वहां अपने साधना के स्थल चुने। जहां जीवन खो गया था, वहां-वहां जैनों ने अपने साधना के स्थल चुने, ताकि वहां तप में और गहनता हो सके, तप में और गहरा उतरा जा सके।

जैन-पद्धति पूर्ण मृत्यु को उपलब्ध करने की पद्धति है। इसलिए 'संथारा' की आज्ञा दी जा सकी। हिंदू-पद्धति पूर्ण जीवन को पाने की पद्धति है। परिणाम एक है। क्योंकि चाहे जीवन शून्य हो जाए और चाहे जीवन पूर्ण हो जाए। दो छोर हैं। इनसे आप बाहर गिर जाते हैं। पूर्णता के छोर से गिरते हैं तो भी, शून्यता के छोर से गिरते हैं तो भी, बाहर गिर जाते हैं।

पृथ्वी भी श्वास ले रही है, पहाड़ भी श्वास ले रहा है, उनकी प्रक्रिया भी वही है। जमीन के भीतर कोयले की खदाने हैं। विज्ञान कहता है कि वह जमीन के द्वारा जो कार्बन इकट्ठा होता है, वही वैद्य। आपके भीतर भी कोयला इकट्ठा होता है। वही कोयला इकट्ठा हो-हो कर आपको बूढ़ा करता है। जितना कार्बन इकट्ठा होता जाता है, उतने आप बूढ़े होते चले जाते हैं। जिस दिन कार्बन कि मात्रा इतनी

हो जाती है कि वह आपके जीवन से ज्यादा हो जाता है, उस दिन आप मरने के करीब पहुंच जाते है। जिस दिन आप मरते है, विज्ञान कि भाषा में, उस दिन आप कार्बन हो गए। उस दिन आप में आक्सीजन न रही, बात समाप्त हो गई। आपका यंत्र टूट गया। अगर हम इसे जीवन की प्रक्रिया मान लें, है यह जीवन की प्रक्रिया। कम कम कम जीवन के प्रकट होने की; जीवन यही नहीं है, लेकिन जीवन के प्रकट होने का अवसर यही है कि वहां एक विशेष संतुलन आक्सीडाइजेशन का, आक्सीकरण का एक विशेष संतुलन चाहिए। तो सारा विराट जगत इसी एक ही प्रक्रिया से जीता है। और सारा विराट जगत एक ही आंदोलन से जीता है। पृथ्वी श्वास लेती है तो ठीक है।

इधर कुछ रुसी वैज्ञानिकों का ख्याल बनना शुरु हुआ है कि जैसे हमारी छाती फूलती है और सिकुड़ती है श्वास लेने में, ऐसे पृथ्वी प्रतिपल थोड़ी बड़ी और छोटी होती है। बहुत बार शायद पृथ्वी के इसी हड़कंप से बहुत से हलन-चलन पैदा हो जाते हैं। आज नहीं कल यह बात शायद साफ हो जाएगी कि पृथ्वी पर भी हृदय के दौरे पड़ जाते हैं। न केवल पृथ्वी बल्कि पूरा विश्व भी यूनिवर्स भी श्वास लेता है और पूरा विश्व भी छोटा और बड़ा होता है। जैसे हमारी छाती फूलती और सिकुड़ती है... निश्चित ही उसके छोटे-बड़े होने का समय लंबा होगा। क्योंकि उसकी श्वास बड़ी गहरी होगी।

हिंदुओं ने इसको प्रतिक में कहा है कि जो हमारे लिए एक कल्प है, वह ब्रम्हा के लिए एक दिन है। तो जो हमारे लिए करोड़ों श्वास होगी, वह ब्रम्हा के शायद एक श्वास हो। शायद वह श्वास इतनी लंबी होगी कि हम उस श्वास में अनेक बार जन्मेंगे और मरेंगे। इसलिए हमें उसका पता भी नहीं चलेंगा।

जब हम श्वास ले रहे हैं तब उसमें भी जीवाणु मर रहे हैं, उनको कभी पता नही चलेगा। हमारी एक श्वास भीतर जाती है, उस बींच हमारी श्वास में न मालूम कितने करोड़ जीवाणु जी लेते हैं। हमारा ओंठ एक बार दूसरे ओंठ से मिलता है, उस मिलने क्षण में न मालूम कितने करोड़ जीवाणु जी लेते हैं। जन्म लेते हैं, मर जाते हैं। उन्हे पता भी नहीं चलेगा कि यह ओंठ वापस खुलेगा। जो हमारी श्वास में जन्मा, जीआ, जन्म दे गया दूसरों को, मर गया, उसे कैसे पता चलेंगा कि यह श्वास अब बाहर भी लौटेगी?

पूरा विश्व श्वास ले रहा है। इसी को हिंदुओं ने कहा है कि जो अंड में है, जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है। विस्तार है। जो अणु में है, वही विराट में है। विस्तार का फर्क है।

-कैवल्य उपनिषद-14

5 विपस्सना द्वारा परम संभोग

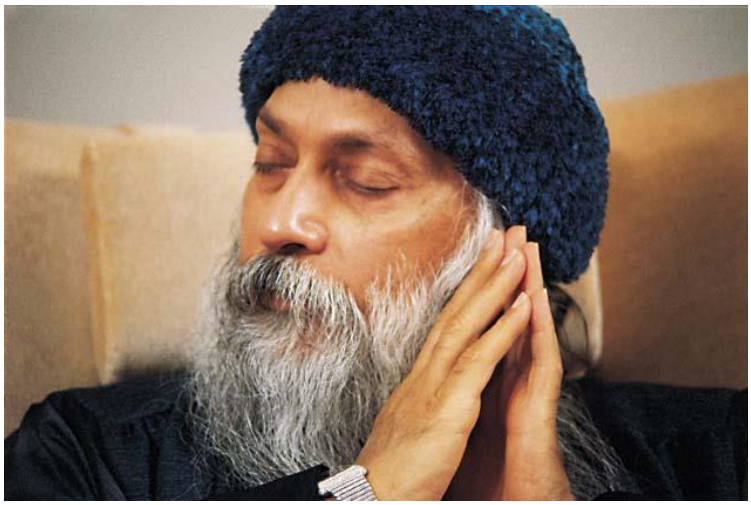

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को ये सूत्र कहे : 'शून्य गृह में प्रविष्ट शांत-चित्त भिक्षु को भली-भांति से धर्म की विपस्सना करते हुए अमानुषी रति प्राप्त होती है।'

जो व्यक्ति शून्य गृह में ठहर जाए; जो अपने भीतर निर्विचार हो जाए; जिसके भीतर विचारों की तरंगें न उठती हों। शून्य यानी निर्विचार। जो व्यक्ति शून्य हो जाए, वही शांत-चित्त है। जो लोग तुम्हें साधारणतः शांत-चित्त दिखायी पड़ते हैं, वह शांति सिर्फ ऊपर से साधी गयी है। क्योंकि भीतर तो विचारों का बवंडर चल रहा है। चुप होने से कोई शांत नहीं होता। न बोलने से कोई शांत नहीं होता; न सोचने से शांत होता है।

तुम ऊपर से बिल्कुल पत्थर की मूर्ति बनकर बैठ सकते हो, और भीतर विचार चलते रहें, तो इस पत्थर की मूर्ति बनने से कुछ भी नहीं होगा।

एक युवक दीक्षा लेने एक सदगुरु के पास पहुंचा--एक बौद्ध भिक्षु के पास। बौद्ध भिक्षु एक बुद्ध-मंदिर में रहता था। जब वह युवक आया, तो उस गुरु ने पूछा कि पहले कहीं और कुछ सीखा है? उसने कहा : हां, पहले मैं एक योगी के पास सीखा हूं। क्या सीखे हो? उस युवक ने जल्दी से पालथी मार ली; पद्मासन में बैठ गया। आंखें बंद कर लीं। दो मिनट तक गुरु देखता रहा। उसने कहा कि अब आंखें खोलो और रास्ता पकड़ो।

युवक ने कहा : रास्ता पकड़ो! मैं आपके पास शिष्य होने आया हूं।

उस गुरु ने कहा : यहां पत्थर की मूर्तियां इस मंदिर में बहुत हैं। हमें और जरूरत नहीं है। इन्हीं को साफ-सम्हाल करते बहुत झंझट हो रही है। यह पद्मासन लगाकर तुम बैठ गए, लेकिन भीतर तुम्हारे मैं पूरा बाजार देख रहा हूं।

पद्मासन लगाने से क्या होगा! शीर्षासन लगाने से भी क्या होगा? भीतर से बाजार बंद होना चाहिए। वही एकमात्र वास्तविक आसन है। शरीर के आसनों में मत उलझ जाना। असली सवाल मन का है; वहां शून्यता होनी चाहिए, तो शांत-चित्त होता है कोई। और जो शांत-चित्त होता है, वही धर्म की विपस्सना कर पाता है।

विपस्सना का अर्थ होता है, लौटकर देखना। पतंजलि के शास्त्र में पतंजलि ने जिसे प्रत्याहार कहा है--पीछे लौटकर जाना; जिसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है। आक्रमण यानी बाहर जाना, दूसरे पर हमला। प्रतिक्रमण यानी अपने पर आना। जिसको जीसस ने कहा है--वापसी। उसी को बुद्ध विपस्सना कहते हैं।

विपस्सना का अर्थ होता है : लौटकर अपने स्रोत को देखना। जब विचारों का जाल हट जाता है और सामने सिर्फ शून्य रह जाता है, तभी तुम लौटकर पीछे देख सकते हो। नहीं तो विचार तुम्हें पकड़े रहते हैं, लौटने नहीं देते। विचारों के उलझाव के कारण तुम अपने मूलस्रोत को देखने से वंचित रह जाते हो।

जो उस मूलस्रोत को देख लेता है--यह बुद्ध का वचन बड़ा अद्भुत है--वह अमानुषी रति को उपलब्ध हो जाता है। वह ऐसे संभोग को उपलब्ध हो जाता है, जो मनुष्यता के पार है।

जिसको मैंने संभोग से समाधि की ओर कहा है, उसको ही बुद्ध अमानुषी रति कहते हैं।

एक तो रति है मनुष्य की--स्त्री और पुरुष की। क्षणभर को सुख मिलता है। मिलता है, या आभास होता है कम से कम। फिर एक और रति है, जब तुम्हारी चेतना अपने ही मूलस्रोत में गिर जाती है; जब तुम अपने से मिलते हो। एक तो रति है दूसरे से मिलने की। और एक रति है अपने से मिलने की। जब तुम्हारा तुमसे ही मिलना होता है, उस क्षण जो महाआनंद होता है, वही समाधि है। संभोग में समाधि की झलक है; समाधि में संभोग की पूर्णता है।

-एस धम्मो सनंतनो-115

6 श्वास-प्रश्वास को होशपूर्वक देखना से होता क्या है?

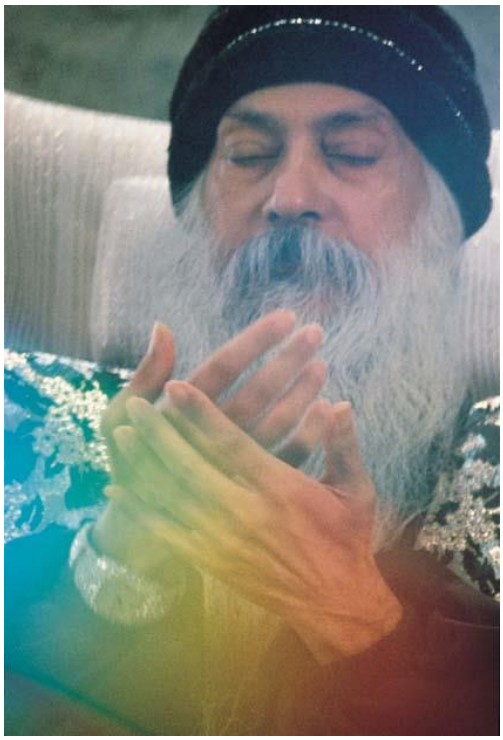

स्वभावतः जब तुम मेरे पास आए हो तो तुम्हें हैरानी लगती होगी, क्योंकि मैं कहता हूं : परमात्मा एक क्षण में मिल सकता है। क्योंकि परमात्मा कल मिले, यह बात ही फिजूल। परमात्मा तो सदा आज है। कल तो परमात्मा के लिए है ही नहीं। कल तो हमारे लिए है, उसके लिए नहीं। परमात्मा के लिए तो सिर्फ आज का ही अस्तित्व है, कल का कोई अस्तित्व नहीं है।

तुम कल परमात्मा से मिलना चाहो और उसके लिए कल का कोई अस्तित्व नहीं, तो मिलना होगा कैसे?

परमात्मा अभी है। आकाश से बरसती इस वर्षा में, वृक्षों की हरियाली में, इस सन्नाटे में, इस बूंदाबांदी में, तुम्हारी मौजूदगी में, मेरी मौजूदगी में; मेरे बोलने में, तुम्हारे सुनने में; यह हमारे हृदय की धड़कनों में, हमारी श्वासों में वही मौजूद है। कल की बात क्यों? परमात्मा कुछ दूर है कि उसे पाने के लिए चलना पड़ेगा? परमात्मा पास से भी पास है। तुम्हारे प्राणों से भी ज्यादा पास है। तुम्हारे हृदय की धड़कन भी थोड़ी दूर है, परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। क्योंकि परमात्मा है वह साक्षी जो तुम्हारे हृदय की धड़कन को देखता है। परमात्मा तुम्हारी सांसों से भी तुम्हारे ज्यादा पास है, क्योंकि परमात्मा है वह साक्षी जो श्वास का भीतर आना-बाहर जाना देखता है।

इसीलिए तो बुद्ध ने विपस्सना ध्यान का आविष्कार किया। अपनी श्वास को देखते रहो; बस इतनी ही बुद्ध ने प्रक्रिया दी जगत को। बुद्ध का सारा सार विपस्सना है। विपस्सना का अर्थ होता है : श्वास को देखना; प्रश्वास को देखना। श्वास भीतर गई, देखना; श्वास बाहर गई, देखना। सिर्फ देखते रहना, कुछ करना नहीं। न राम-राम जपना, न ओंकार जपना, न गायत्री, न नमोकार, कुछ भी नहीं। सिर्फ श्वास भीतर गई, होशपूर्वक इसे देखना। साक्षी। फिर श्वास बाहर गई, इसे देखना। फिर जल्दी ही तुम्हें दो और बातें दिखाई पड़ेंगी। श्वास जब

भीतर जाती है तो दिखाई पड़ेगी, बाहर जाती है तो दिखाई पड़ेगी--यह प्राथमिक चरण। दूसरे चरण में, जब गहराई देखने की बढ़ेगी, तो तुम्हें यह भी दिखाई पड़ेगा : श्वास भीतर जाती है और फिर क्षण भर को ठहर जाती है। श्वास बाहर जाती है और क्षण भर को ठहर जाती है। फिर तुम्हें दो चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी और--श्वास का आना और जाना और श्वास का भीतर ठहरना और बाहर ठहरना। वह जो ठहराव है जब श्वास बाहर की बाहर रह गई और श्वास भीतर की भीतर रह गई, छोटा-सा है, पल मात्र का है, लेकिन उसी पल में पलक खुलती है। उसी पल में द्वार खुलता है। उसी पल में साक्षी का अनुभव होता है। क्योंकि श्वास भी देखने को नहीं बचती, देखने वाला अकेला रह जाता है। और जब देखने को कुछ भी नहीं बचता तो देखने वाला स्वयं को देखता है। जब सब विषय-वस्तु खो जाते हैं, सब दृश्य विलीन हो जाते हैं, तो द्रष्टा अपने को ही अनुभव करता है। उस अनुभूति का नाम परमात्मा है।

-सपना यह संसार-14

विपस्सना एक कला है

विपस्सना कला है। विपस्सना का अर्थ होता है : देखने की कला। साक्षीभाव की कला। विपस्सना शब्द का भी अर्थ यही होता है : देखना, दर्शन। तुम अपने भीतर बैठ कर अपनी समस्या को देखो। देखते जाओ, देखते जाओ। पहले-पहले ऊपर-ऊपर का कचरा आएगा, फिर और गहराई, और गहराई। आखिर में तुम्हें जड़ें मिल जाएंगी।

और एक चमत्कार घटित होता है : जिस क्षण तुम्हारे हाथ में जड़ें लग जाएंगी, उसी क्षण समस्या तिरोहित हो जाती है। इसलिए मैं तुम्हारे जीवन में दमन के पक्ष में नहीं हूं, रूपांतरण के पक्ष में हूं। रूपांतरण की कीमिया है--ध्यान। और ध्यान जब तुम्हें रूपांतरित कर देता है, तो जो अवस्था बनती है वही समाधि है। और समाधि ही समाधान है।

-ओशो, सुमिरन मेरा हरि करैं-5

7 सर्वाधिक लोगों को ज्ञानोपलब्धि : विपस्सना से

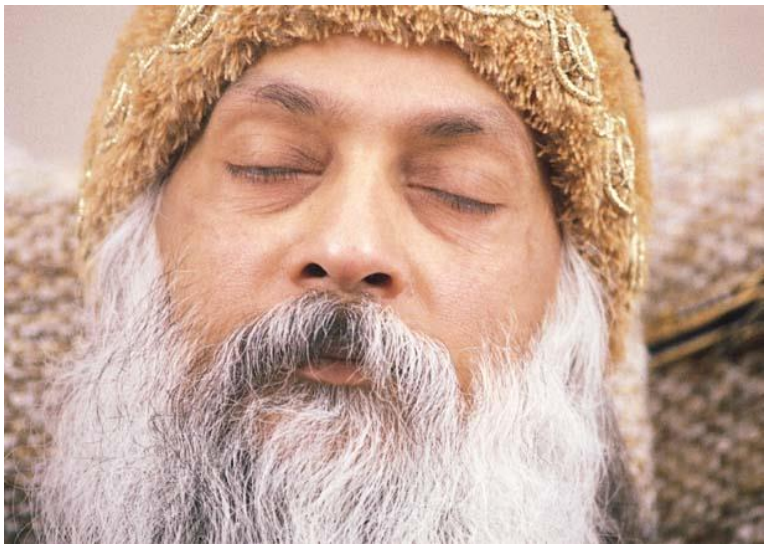

कल कभी आते देखा है? जब आता है आज आता है। और आज को तुम खराब कर रहे हो उस कल के लिए जो कभी आएगा नहीं। और जब आज की तरह कल आएगा भी, तो तुम्हारी आदत मजबूत होती जा रही है रोज-रोज, आज को बर्बाद करने की कल के लिए। यह आदत सघन होती जाएगी, यह यंत्रवत हो जाएगी। आज तुम कल के लिए सोचोगे। कल जब आएगा आज की तरह, तब तुम फिर कल के लिए सोचोगे। तुम कल भी यही कर रहे थे। जो बीत गया कल, तब तुम आज के लिए सोच रहे थे। लेकिन जीओगे कब? दो कलों के बीच उलझे तुम जीओगे कब?

ये दो कल ही चक्की के दो पाट हैं, जो तुम्हें पीस रहे हैं। इनके बाहर आ जाओ। ध्यान या साक्षी-भाव इनके बाहर आने की विधि है। ध्यान का केवल इतना ही अर्थ है, जो है उससे इंच भर यहां-वहां न जाऊंगा। मन भागेगा आदतों के अनुसार, वापस ले आऊंगा, फिर-फिर ले आऊंगा। ध्यान की जितनी विधियां हैं, अनंत विधियां हैं ध्यान की, लेकिन सब का मूल सार, सब का राज एक है--किस तरह चैतन्य को वर्तमान में ले आया जाए।

जैसे विपस्सना है--बुद्ध की परम विधि! जितने लोग विपस्सना से ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं उतने लोग किसी और विधि से उपलब्ध नहीं हुए, क्योंकि बड़ी सुगम और सरल विधि है। मगर विधि क्या है? विधि सीधी-साफ है : श्वास का बाहर आना, श्वास का भीतर जाना, इसे देखो। विपस्सना का अर्थ होता है : देखो, अंतर्दृष्टि। बस देखते रहो साक्षी बने--यह श्वास भीतर गई, यह भीतर पहुंची, यह क्षण भर ठहरी, यह वापस चली, यह बाहर गई, यह बाहर निकल गई, यह क्षण भर बाहर रुकी रही, यह फिर भीतर आने लगी--बस यह जो श्वास का वर्तुलाकार परिभ्रमण चल रहा है, यह जो श्वास की माला चल रही है, इसको देखते रहो। कुछ मत करो।

क्या होगा इसका परिणाम? इसका परिणाम कि तुम वर्तमान में जीने की क्षमता को उपलब्ध हो जाओगे। श्वास वर्तमान है। बुद्ध यह नहीं कह रहे हैं, जो श्वास जा चुकी है उसके संबंध में सोचो; जो अभी आने वाली है उसके संबंध में सोचो। वे कह रहे हैं, जो अभी है, भीतर जा रही है उसके संबंध में, बाहर जा रही है उसके संबंध में। श्वास के साथ ही डोलते रहो।

मन भागेगा, मन हजार विचार उठाएगा। तुम चुपचाप उसे फिर वापस ले आना श्वास पर। श्वास तो एक बहाना है, निमित्त है, एक खूंटी है। यही सारी और विधियों का सार भी है।

सूफी इसे जिक्र कहते हैं, प्रभु-स्मरण। हर बार अपने मन को वापस लौटाओ प्रभु-स्मरण पर। कोई भी नाम चुन लिया, जैसे राम चुन लिया। मन यहां-वहां भागे, राम की खूंटी पर वापस ले आओ। पलटू इसी को सुरति कहते हैं। सारे संतों ने इसे सुरति कहा है। सुरति बुद्ध का ही वचन है, लेकिन बिगड़ते-बिगड़ते, लोकभाषा में आते-आते, घिसते-घिसते सुरति हो गया। बुद्ध ने तो कहा था : स्मृति। स्मरणपूर्वक जीओ, होशपूर्वक जीओ। जो कर रहे हो उसकी स्मृति बनी रहे, उससे हटो मत। संत कहते हैं सुरति। सूफी कहते हैं जिक्र। कृष्णमूर्ति कहते हैं अवेयरनेस, जागृति। महावीर ने कहा है विवेक, बोध। ये अलग-अलग नाम हैं, मगर बात एक, सार एक, राज एक। अतीत और भविष्य को जाने दो। वे हैं ही नहीं। तुम छायाओं को पकड़े बैठे हो। और छायाओं के कारण तुम माया में पड़े हो। छाया यानी माया। और दोनों छायाओं के बीच में सत्य मौजूद है, सत्य का द्वार खुला है। प्रभु-मंदिर का द्वार वर्तमान में खुला है। वर्तमान में जिस दिन आ जाओगे, आने की प्रक्रिया का नाम ध्यान; आ गए, ठहर गए, उस अवस्था का नाम संन्यास। फिर तुम संसार में ऐसे रह सकोगे जैसे जल में कमल।

-काहे होत अधीर-14

8 स्वधर्म के अनुसार ध्यान विधि जरूरी

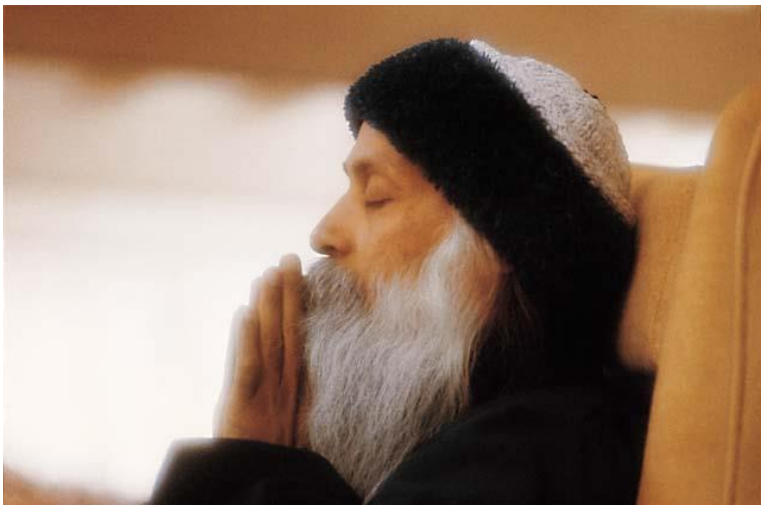

ख्याल रखना, परधर्म और स्वधर्म का मतलब यह नहीं होता--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन। नहीं, उन दिनों कोई मुसलमान तो थे नहीं भारत में, इसलिए यह तो कोई सवाल ही नहीं था; न कोई ईसाई थे, न कोई यहूदी थे, न कोई पारसी थे। इसलिए कृष्ण ने जब कहा स्वधर्म, परधर्म, तो उनका मतलब साफ है। मतलब इतना ही है कि जो तुम्हारे अनुकूल हो, वह स्वधर्म, जो तुम्हारे प्रतिकूल हो, वह परधर्म।

निश्चित ही, अगर तुम आलसी हो, अगर तुम्हें कर्म करने में कोई रुचि नहीं आती, करने मात्र में तुम्हें कोई रस नहीं आता--अपनी परख करना, अपनी जांच-परख करना, तुम्हें पता चल जाएगा। तुम्हारे जीवन के सुंदर क्षण कब आते हैं, जब तुम कुछ करते हो तब आते हैं, या तुम जब कुछ नहीं करते तब आते हैं, तुम्हारे जीवन के पराकाष्ठा के क्षण कब आते हैं? तुम जब आंख बंद करके बैठे हो तब आते हैं?

एक युवक मेरे पास आया। अमेरिका से आया, वह शांत ध्यान करना चाहता था। मैंने उसे देखा, मैंने कहा, नहीं, यह तेरे काम का नहीं, यह परधर्म होगा। मैंने उससे कहा, तू तो एक काम कर, तू रोज सुबह एक घंटा दौड़, दौड़ना तेरा ध्यान है। उसने कहा, आप कहते क्या हैं! आठ साल से मैं यह कर रहा हूं, मैं दौड़ने में बड़ा आनंदित होता हूं। और कभी-कभी दौड़ते-दौड़ते ऐसे क्षण आ जाते हैं, जब न तो मैं देह रह जाता, न मन। आपकी किताबें पढ़कर, आपकी बातें सुनकर मुझे लगा कि और गहरे में उतरना है, इसीलिए तो मैं यहां आया हूं। लेकिन दौड़ना ही आप कहते हैं! मैंने कहा, तेरे लिए यही ठीक होगा।

कोई नाचकर ध्यान को उपलब्ध होता है, कोई शांत बैठकर, मूर्तिवत होकर ध्यान को उपलब्ध होता है। ध्यान का कोई संबंध न तो शांत बैठने से है, न नाचने से है। ध्यान का संबंध तुम्हारे स्वभाव की अनुकूलता से है। जब तुम्हारा स्वभाव और तुम्हारा कृत्य अनुकूल होते हैं, दोनों में तालमेल होता है, सामंजस्य होता है, तत्क्षण शांति आ जाती है। तुम्हारे भीतर एक राग बजता है, एक गीत पैदा होता है।

उस युवक ने कहा कि यह मुझे हो रहा है। जब मैं दौड़ता हूं, सुबह की हवाओं में, समुद्रत्तट पर पड़ती सूरज की रोशनी में, कभी-कभी मील, दो मील, तीन मील दौड़ने के बाद ऐसी घड़ियां आ जाती हैं जब मुझे न तो देह का पता रहता है, न मन का पता रहता है। बस दौड़ रह जाती है, दौड़ने वाला खो जाता है, तब बड़े शिखर के क्षण मुझे अनुभव होते हैं, बड़ी अद्भुत शांति, बड़ा अद्भुत आनंद, उत्सव मेरे भीतर पैदा होता है!

अब इस युवक को अगर विपस्सना करने बिठा दिया जाए, या अनापानसती करने बिठा दिया जाए, यह इसके अनुकूल न होगा, यह पगला जाएगा। फिर ऐसे लोग हैं, जैसे अष्टावक्र, इनको अगर दौड़ने को कहा जाए तो संभव नहीं होगा।

तुम अपने स्वभाव को पहचानो।

निश्चित ही आलस्य से भी मार्ग है। लेकिन तब आलस्य को समर्पण बनाना होता है। तब आलस्य को भी रूपांतरित करना होता है। तब आलस्य को अपने अहंकार का विसर्जन बनाना होता है। तब कहना होता है--प्रभु, अब तेरी मर्जी!

बुद्ध का मार्ग आलस्य का मार्ग नहीं है, बुद्ध का मार्ग कर्म का मार्ग है। इसलिए बुद्ध का शब्द जो बुद्ध उपयोग करते हैं, वह है, श्रमण। श्रम का मार्ग है, श्रम से मिलेगी समाधि। अथक श्रम से मिलेगी समाधि। खूब दौड़ना पड़ेगा, तब मंजिल मिलेगी। बुद्ध भी क्षत्रिय थे, इसलिए स्वाभाविक।

अगर तुम आलसी हो, तो ब्राह्मणों की सुनो, क्षत्रियों की मत सुनो। इसलिए ब्राह्मण कहते हैं, प्रसाद से मिलेगा। फर्क समझे? क्षत्रिय कहते हैं, प्रयास से; ब्राह्मण कहते हैं, प्रसाद से। ब्राह्मण कहते हैं, क्या प्रयास करना! उसकी अनुकंपा पर्याप्त है। तुम जरा शांत होकर बैठ जाओ, उसको बरसने दो, वह बरस ही रहा है, तुम जरा द्वार-दरवाजे खोल दो, ब्रह्म बरस ही रहा है, ब्रह्म-वर्षा हो ही रही है, तुम भर जाओगे, कुछ और करना नहीं है। ब्राह्मण-संस्कृति का मौलिक स्वर है, प्रसाद, प्रभुकृपा। और श्रमण-संस्कृति, जैन और बौद्धों का मौलिक स्वर है, प्रयास, श्रमण, श्रम। कुछ करना होगा। जैन और बौद्ध संस्कृति में ईश्वर को जगह ही नहीं है। कोई जगह की जरूरत भी नहीं है। अपने ही श्रम से मिल जाता है, उसके प्रसाद की कोई आवश्यकता नहीं है। और ब्राह्मण-संस्कृति में मूलतः प्रयास के लिए कोई जगह नहीं है, उसकी कृपा से ही मिलता है। तो तुम उसकी कृपा के योग्य बन जाओ।

-एस धम्मो सनंतनो-91

9 रुचि के अनुकूल रास्ता : विपस्सना सबके लिए नहीं

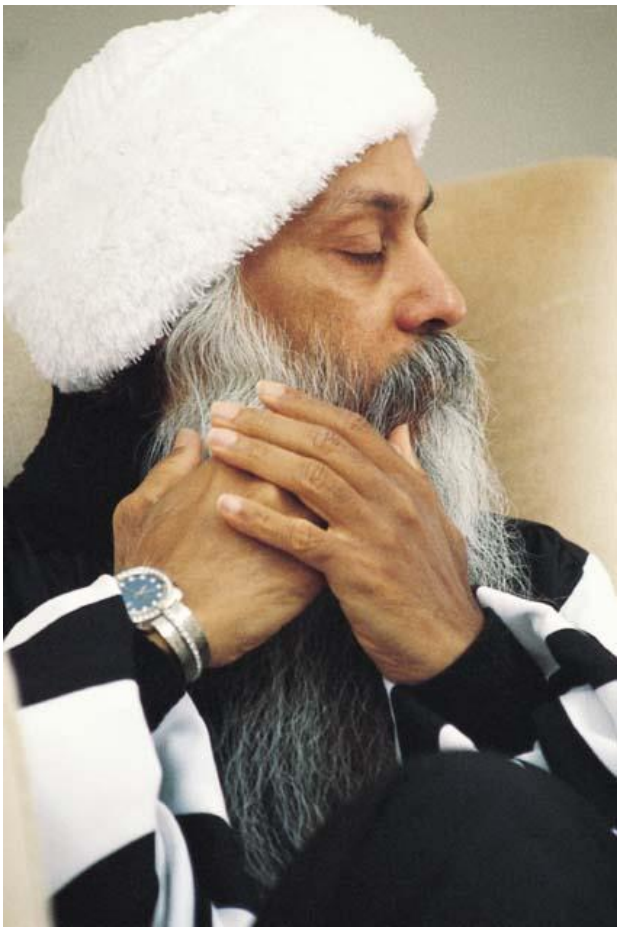

कुछ हैं, जो मधुशाला के कारण नहीं पहुंच पाते हैं। और कुछ हैं, जो मधुशाला के बिना नहीं पहुंच पाएंगे। और कोई ऐसा नियम नहीं है, जो सभी मनुष्यों के लिए एक जैसा लागू होता हो। अगर दो मोटे नियम बांटने हों, तो प्रेम और ध्यान के बांटे जा सकते हैं।

शांत हो कर समझने की कोशिश करो : तुम्हारे चित्त में जिस बात से उमंग भर जाती हो, हृदय खिलने लगता हो--भजन से, कीर्तन से, नृत्य से--तो मधुशाला तुम्हारा मार्ग है। तो फिर फिकर न करो संस्कारों की। और अगर ये सब बातें तुम्हें जंचती ही न हों। मगर एक बात करना ख्याल। करक देख लेना।

यहां मेरे पास लोग आ जाते हैं; वे कहते हैं : 'और तो सब ठीक। आपकी बात हमें ठीक लगती है। मगर यह नाच, यह कीर्तन, यह ध्यान--यह हमें ठीक नहीं लगता।'

तो मैं उनसे कहता हूं : 'हो भी सकता है, तुम्हीं ठीक हो। मगर करके देख लेना। किसको पता--ये केवल संस्कार बोल रहे हों तुम्हारे भीतर से--कि हमें यह ठीक नहीं लगता।'

तुम एक दफा करके देख लेना। करके भी ठीक न लगे, तो ठीक। फिर तुम्हारे लिए मार्ग--शांत और मौन ध्यान का है। फिर नृत्य का तुमसे मेल नहीं बैठता। लेकिन मेरे अनुभव में ऐसा आया है कि बहुमत नृत्य से जाएगा, अल्पमत ध्यान से जाएगा। इसलिए जैनों की संख्या बढ़ न सकी, यह कोई अकारण बात नहीं है। नहीं बढ़ सकती थी।

बौद्ध भी हिंदुस्तान से विदा हो गए। होना ही पड़ा। क्योंकि शुद्ध ध्यान का मार्ग था। चीन और जापान में फल गए, क्योंकि वहां जाकर उन्होंने अपना पूरा रंग बदल लिया। वहां उन्होंने जा कर प्रेम को सम्मिलित कर लिया। भारत से जो अनुभव हुआ था, उससे उन्होंने सीख ले ली। एक बात उन्होंने समझ ली कि आदमी की बहुमत संख्या प्रेम से जाएगी।

तो भारत में बुद्ध का जो शुद्ध धर्म था, वह तो नष्ट हो गया। चीन और जापान में जो धर्म है, वह शुद्ध नहीं है। वह मिश्रित है। बुद्ध उससे नाराज होंगे। बुद्ध अगर लौटे, तो वे कहेंगे :'यह मेरा धर्म नहीं है।' क्योंकि जो बुद्ध ने इन्कार किया था, वहीं जा कर चीन में बौद्ध भिक्षुओं को स्वीकार कर लेना पड़ा।

बुद्ध ने कहा था : कोई भगवान नहीं है। जब भगवान ही नहीं है, तो भजन कैसा, प्रार्थना किसकी? लेकिन बौद्ध भिक्षुओं को अनुभव हुआ कि इसकी वजह से तो भारत से धर्म उखड़ गया।

और तुम्हें पता होना चाहिए कि बुद्ध ने वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी थी। नहीं देना चाहते थे। उनको बात साफ थी कि यह मेरा मार्ग प्रेम का नहीं है। स्त्रियां आएंगी, तो उपद्रव आएगा। बहुत मजबूरी में ही उन्हें देना ही पड़ा, क्योंकि बहुत दबाब पड़ा। हजारों स्त्रियां जगह-जगह आने लगीं। और उन्होंने प्रार्थना करनी शुरू की कि हमें स्वीकार करें। और स्त्रियां रोएं--और प्रार्थना करें--और चरणों में गिरें। उन्होंने कहा : हमें स्वीकार करें। आखिर हमारा क्या कसूर है?

तो बुद्ध यह भी नहीं कह सकते थे कि तुम्हारा कोई कसूर है। यह तो उनको भी समझ में आता था कि स्त्री होने में किसी का कसूर नहीं है। 'तो फिर हमें स्वीकार क्यों नहीं करते?'

वहाँ भी उनकी अड़चन थी। क्योंकि उनका मार्ग ध्यान का है। और स्त्री आई, तो वह कहीं न कहीं से बांसुरी ले आएगी; घूंघर ले आएगी; कुछ उपद्रव शुरू कर देगी। फिर हाथ के बाहर हो जाएगी बात।

साधारण पुरुष ही स्त्रियों से डरते हैं--ऐसा नहीं; बुद्ध-पुरुष भी भयभीत होते हैं!

जब बहुत आग्रह किया, तो मजबूरी में उन्होंने स्त्रियों को दीक्षा दी। लेकिन जिस दिन दीक्षा दी, उन्होंने जो वचन कहे, वे समझने जैसे हैं।

बुद्ध ने जब पहली दीक्षा दी स्त्रियों को, तो उन्होंने कहा कि 'तुम नहीं मानते हो...।' क्योंकि भिक्षु भी आग्रह करने लगे। और भिक्षुओं ने भी कहा कि यह आपके नाम पर धब्बा रह जाएगा कि आपने स्त्रियों के साथ ज्यादती की। उनके परम शिष्य आनंद ने भी जब कहा कि इससे हमें बेचौनी होती है कि स्त्रियां इतना तड़फती हैं! सिर्फ स्त्री देह में होने के कारण आप भेद करते हैं? आत्मा तो सब एक है--आप खुद ही कहते हैं!

तो बुद्ध ने कहा--कि ठीक। उन्होंने दीक्षा दी। और दीक्षा देनी पड़ी इसलिए भी कि उनकी मां तो बचपन में ही मर गई थी। जिस दिन बुद्ध पैदा हुए, उसके सात दिन बाद मर गई; तो उसकी मां की बहन ने उन्हें पाला था। वह उनकी मां थी असली में, क्योंकि सात दिन में मां तो मर गई। बुद्ध ने उसी को मां की तरह जाना था। जब उसने दीक्षा के लिए प्रार्थना की, तो बुद्ध इनकार न कर सके। अपनी मां को कैसे इनकार करे!

तो उन्होंने कहा कि 'ठीक है। मैं दीक्षा देता हूं। दीक्षा तो देता हूं, लेकिन याद रखना : अगर स्त्रियों को दीक्षा न दी होती, तो मेरा धर्म कम से कम पांच हजार साल चलता। अब अगर पांच सौ साल भी चल जाए, तो बहुत।'

और यह बात सच साबित हुई। पांच सौ साल भी नहीं चल सका। उखड़ गए। जब चीन में गए बौद्ध भिक्षु--तिब्बत में गए, और सीलोन गए, और बर्मा गए--भारत के बाहर बौद्ध धर्म को पहुंचाया, तो उन्होंने बदल डाला सारा।

बुद्ध ने भगवान के लिए कोई जगह न रखी थी, परमात्मा के लिए कोई जगह न रखी थी; भिक्षुओं ने बुद्ध को ही परमात्मा की जगह रख दिया और बुद्ध की प्रार्थना का उपाय खोल दिया और कहा कि बुद्ध की कृपा से सब हो जाएगा। तो टिका।

बहुमत जगत का भावुक है। अल्पमत ही है जगत का, जो भावशून्य है। इसलिए तुम्हें पता नहीं चलेगा, जब तक तुम प्रयोग न करोगे। प्रयोग करके ही अनुभव होगा। इसलिए कोई मुझसे आकर यह न कहे कि हमें जंचता नहीं। एक दफा अनुभव करके देखो। फिर न जंचे, तो बात ठीक है। लेकिन एक दफा निष्पक्ष अनुभव करके देखो, तो ही तुम्हें पक्का होगा। फिर न जँचे, तो यहां हमारे पास प्रयोग हैं--विपस्सना के, मौन ध्यान के, झा-झेन के--जिसके द्वारा तुम यात्रा शुरू कर सकते हो।

अब तक दुनिया में दो ही तरह के धर्म रहे हैं--ध्यान के और प्रेम के। और वे दोनों अलग-अलग रहे हैं। इसलिए उनमें बड़ा विवाद रहा। क्योंकि वे बड़े विपरीत हैं। उनकी भाषा ही उल्टी है।

ध्यान का मार्ग विजय का, संघर्ष का, संकल्प का। प्रेम का मार्ग हार का, पराजय का, समर्पण का। उनमें मेल कैसे हो।

इसलिए दुनिया में कभी किसी ने इसकी फिकर नहीं की दोनों के बीच मेल भी बिठाया जा सके।

मेरा प्रयास यही है कि दोनों में कोई झगड़े की जरूरत नहीं है। एक ही मंदिर में दोनों तरह के लोग हो सकते हैं। उनको भी रास्ता हो, जो नाच कर जाना चाहते हैं। उनको भी रास्ता हो; जो मौन हो कर जाना चाहते हैं।

अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल परमात्मा का रास्ता खोजना चाहिए।

-नहीं सांझ नहीं भोर-8

10 मछली बाजार में विपस्सना साधना

मैं एक रेस्ट हाउस में मेहमान था। और एक मंत्री भी वहां रुके थे। और रात मंत्री सो न सके, क्योंकि कुछ दस-बारह कुत्ते रेस्ट हाउस के कंपाउंड में भौंके। वे आये मेरे पास कमरे में, उन्होंने कहा कि आप तो बड़े मजे से सो रहे हैं। मुझे हिलाया। मैंने कहा, क्या मामला है? उन्होंने कहा, आपको देख कर ईर्ष्या होती है। आप मजे से सो रहे हैं, ये कुत्ते भौंक रहे हैं। ये मुझे सोने नहीं देते।

मैंने कहा कि आप देख ही रहे हैं कि मैं सो रहा हूं। अगर आप नहीं सो पा रहे हैं तो गड़बड़ कुछ आपमें होगी, कुत्तों में नहीं हो सकती। फिर कुत्तों को तो पता भी नहीं है कि नेता जी आये हैं। न अखबार पढ़ें, न रेडियो सुनें। ये कुत्ते हैं, इनको कुछ पता ही नहीं है कि आपका यहां आगमन हुआ है। ये कोई आदमी थोड़े ही हैं कि आपके स्वागत में कुछ शोरगुल कर रहे हैं, कि कोई आपके स्वागत में व्याख्यान कर रहे हैं। इनको कुछ लेना-देना नहीं है, अपने काम में लगे हैं।

पर उन्होंने कहा, मैं सोऊं कैसे यह बतायें। तो मैंने कहा, आप एक काम करें। कुत्ते नहीं भौंकना चाहिए, यह बात आपको बाधा डाल रही है। आप बिस्तर पर लेट जायें और कहें कि 'भौंको कुत्तो, तुम्हारा काम भौंकना है, मेरा काम सोना है। तुम भौंको, हम सोते हैं।' और शांति से सुनें। कुत्तों के भौंकने में भी एक रस है।

उन्होंने कहा, क्या कह रहे हैं! मैंने कहा, आप कोशिश करके देख लें। आप अपनी कोशिश करके देख लिये, उससे कुछ हल नहीं हो रहा है, आधी रात हो गयी। कुत्तों के भौंकने में भी एक रस है। वहां भी परमात्मा ही भौंक रहा है। यह भी परमात्मा का एक रूप है। इसको स्वीकार कर लें। इसके साथ विरोध छोड़ दें। इसे अंगीकार कर लें कि ठीक है तुम भी भौंको और हम भी सोयें। दुनिया बड़ी है। तुम्हारे लिए भी जगह है, मेरे लिए भी जगह है। परमात्मा बहुत बड़ा है, सबको संभाले है।

उन्होंने कहा, अच्छा चलो करके देख लेते हैं। राजी तो वे नहीं दिखाई पड़े। लेकिन कोई उपाय भी न था, तो करके देख लिया। कोई आधा घंटे बाद वे तो घुर्राने लगे। मैं गया। मैंने उनको हिलाया। मैंने कहा, क्या मामला है? बोले, हद हो गयी, अब आपने फिर जगा दिया। किसी तरह मेरी नींद लगी थी।

मैंने कहा, अब तो आपको तरकीब हाथ में लग गयी, अब कोई अड़चन नहीं है। मगर नींद लग गयी थी, यह मैं जान लेना चाहता हूं। क्योंकि आप घुर्रा रहे थे। उन्होंने कहा, काम तो की बात, क्योंकि जैसे ही मैं शिथिल हो कर पड़ गया हूं... मैंने कहा ठीक है। कुत्ते भौंकते हैं, भौंकते हैं।

ऐसी सहज स्वीकृत दशा है ध्यान। तुम जाग कर देखो : जो हो रहा है हो रहा है। हवाई जहाज भी चलेंगे, ट्रेन भी गुजरेगी, मालगाड़ियां शंटिंग भी करेंगी, ट्रक भी गुजरेंगे, बच्चे रोएंगे भी, स्त्रियां बर्तन भी गिरायेंगी, पोस्टमैन दरवाजा भी खटखटाएगा--यह सब होगा।

एकाग्रता के कारण लोग जंगल भाग-भाग कर गये। उनको ध्यान का पता नहीं था; नहीं तो ध्यान तो यहीं हो जायेगा।

मैं एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक का जीवन पढ़ रहा था। वह पूरब आना चाहता था विपस्सना ध्यान सीखने। तो बर्मा में सबसे बड़ा विपस्सना का स्कूल है--बौद्धों के ध्यान का। तो उसने तीन सप्ताह की छुट्टी निकाली। बड़ी तैयारियां करके रंगून पहुंचा। बड़ी कल्पनाएं ले कर पहुंचा था कि किसी पहाड़ की तलहटी में, कि घने वृक्षों की छाया में, कि झरने बहते होंगे, कि पक्षी कलरव करते होंगे, कि फूल खिले होंगे--एकांत में तीन सप्ताह आनंद से गुजारूंगा। यह न्यूयार्क का पागलपन...! तीन सप्ताह के लिए बड़ा प्रसन्न था। लेकिन जब उसकी टैक्सी जा कर आश्रम के सामने रुकी तो उसने सिर पीट लिया। वह रंगून के बीच बाजार में था, मछली बाजार में। बास ही बास और उपद्रव ही उपद्रव, सब तरफ शोरगुल और मक्खियां भिनभिना रही हैं और कुत्ते भौंक रहे और आदमी सौदा कर रहे हैं और स्त्रियां भागी जा रही हैं, और बच्चे चीख रहे हैं। यह आश्रम की जगह है? उसके मन में तो हुआ कि इसी वक्त सीधा वापिस लौट जाऊं। लेकिन तीन दिन तक कोई लौटने के लिए हवाई जहाज भी न था। तो उसने सोचा अब आ ही गया हूं तो कम से कम इन सदगुरु के दर्शन तो कर ही लूं! यह किन सदगुरु ने यह आश्रम खोल रखा है यहां? यह कोई जगह है आश्रम खोलने की?

भीतर गया तो बड़ा हैरान हुआ। सांझ का वक्त था और कोई दो सौ कौए आश्रम पर लौट रहे, क्योंकि सांझ को बौद्ध भिक्षु भोजन करके उनको कुछ फेंक देते होंगे चावल इत्यादि। तो वे सब वहां... बड़ा शोरगुल। कौए, महाराजनीतिज्ञ, बड़े विवाद में लगे। शास्त्रार्थ चल रहा है। और कौए तो शिकायत ही करते रहते हैं। उनको कभी किसी चीज से शांति तो मिलती नहीं। भ्रष्ट योगी हैं। शिकायत उनका धंधा है। वे एक-दूसरे से शिकायत में लगे हुए, चीख-चीत्कार मच रहा है।

उसने कहा...। और वहीं भिक्षु ध्यान करते हैं। कोई टहल रहा, जैसा बौद्ध टहल कर ध्यान करते हैं। कोई वृक्ष के नीचे शांत बैठा ध्यान कर रहा है। खड़ा हो कर एक क्षण देखता रहा, बात कुछ समझ में नहीं आयी, बड़ी विरोधाभासी लगी। लेकिन भिक्षुओं के चेहरों पर बड़ी शांति भी है। जैसे यह सब कुछ हो ही नहीं रहा है, या जैसे ये कहीं और हैं, किसी और लोक में हैं जहां ये सब खबरें नहीं पहुचतीं या पहुंचती हैं तो कोई विक्षेप नहीं है। इन भिक्षुओं के चेहरों को देख कर उसने सोचा तीन दिन तो रुक ही जाऊं।

वह गुरु के पास गया तो गुरु से उसने यही कहा कि यह क्या मामला है? यह कहां जगह चुनी आपने? तो गुरु ने कहा : रुको, तीन सप्ताह बाद अगर तुम फिर यही प्रश्न पूछोगे तो उत्तर दूंगा। तीन सप्ताह रुक गया। पहले तो तीन दिन के लिए रुका, लेकिन तीन दिन में लगा कि बात में कुछ है। एक सप्ताह रुका। एक सप्ताह रुका तो पता चला कि धीरे-धीरे यह बात कुछ अर्थ नहीं रखती कि बाजार में शोरगुल हो रहा है, ट्रक जा रहे हैं, कारें दौड़ रहीं, कौए कांव-कांव कर रहे, कुत्ते भौंक रहे, मक्खियां भिनभिना रहीं, ये सब बातें कुछ अर्थ नहीं रखतीं। तुम कहीं दूर लोक में जाने लगे। तुम कहीं भीतर उतरने लगे, कोई चीज अटकाव नहीं बनती।

दूसरे सप्ताह होते-होते तो उसे याद ही नहीं रहा। तीसरे सप्ताह तो उसे ऐसे लगा कि अगर ये कौए यहां न होते, ये कुत्ते यहां न होते, यह बाजार न होता, तो शायद ध्यान हो ही नहीं सकता था। क्योंकि इसके कारण एक पृष्ठभूमि बन गयी। तब उसने गुरु को कहा कि मुझे क्षमा करें। मैंने जो शिकायत की थी वह ठीक न थी। वह मेरी जल्दबाजी थी।

गुरु ने कहा : बहुत सोच कर ही यह आश्रम यहां बनाया है। जान कर ही यहां बनाया है। क्योंकि विपस्सना का प्रयोग ही यही है कि जहां बाधा पड़ रही हो वहां बाधा के प्रति प्रतिक्रिया न करनी। प्रतिक्रिया-शून्य हो जाये चित्त, तो शांत हो जाता है।

-महागीता-56

11 बुद्ध के दो ध्यान : विपस्सना और चक्रमण

प्रश्नः श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि संत स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं। स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः। यह बात समझ में नहीं आती?

यह बात सरल है, मधुर भी, मीठी भी। इसका अर्थ हुआ कि जैसे ही कोई सदगुरु देह को छोड़ता है वैसे ही उसका तीर्थ उजड़ जाता है। ऐसे तो सब वही का वही होता है। बोधगया में अब भी सब वही का वही है... वही वृक्ष, ठीक वही वृक्ष! पच्चीस सौ वर्ष से सम्हाल कर रखा गया है। उसी की शाखाएं बार-बार लगाई गई हैं, ताकि पुराना वृक्ष मर न जाए। वही वृक्ष, जिसके नीचे बैठ कर गौतम सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बने थे। वे ही पत्ते, वे ही शाखाएं, वही रसधार, वही भूमि, वही आकाश... सब कुछ तो बोधगया में वही है। मगर तीर्थ कहां? कितने दूर-दूर से लोग आते हैं उस वृक्ष के पास बैठने को और बैठ कर चले जाते हैं। न कुछ हाथ लगता, न कुछ अनुभव होता। उजड़ गया है यह तीर्थ। कभी यहां बस्ती थी, अब तो वीरान है। कभी यहां मरूद्यान था, अब तो मरुस्थल है। कभी यहां अदभुत फूल खिले थे... ऐसे कि जो कभी-कभी ही खिलते हैं, अनूठे, अलौकिक, आकाश के। अब तो घास के फूल भी नहीं लगते। पंडे-पुजारी मंदिर पर कब्जा किए बैठे हैं।

और तुम चकित होओगे यह बात जान कर कि बुद्ध का मंदिर और ब्राह्मण पुजारी उस पर कब्जा किए बैठा है! हिंदू पुजारी कब्जा किए बैठा है बुद्ध के मंदिर पर। बुद्ध ने जिस ब्राह्मणवाद का विरोध किया, जीवन भर सतत संघर्ष किया, जिस वर्णाश्रम धर्म के खिलाफ बगावत उठाई, आग लगाई, उसी के ठेकेदार बुद्ध के मंदिर पर कब्जा किए बैठे हैं।

मोहम्मद जब काबा में थे और जब उन्होंने काबा की तीन सौ पैंसठ मूर्तियों को निकाल कर बाहर फिंकवा दिया था, काबा के मंदिर को कचरे से खाली कर दिया था, तो वह तीर्थ था, अब नहीं। अब तो फिर मूर्ति बन गई। अब तो काबा का काला पत्थर ही मूर्ति का काम करने लगा। पहले लोग मूर्तियों के पैर चूमते थे, अब इस पत्थर को जाकर चूम आते हैं। मोहम्मद रोते होंगे, उनकी आंख से आंसू झरते होंगे कि क्या इसीलिए इतना मैंने श्रम किया था?

मगर यह इस जगत का स्वभाव है। यहां कोई भी बगीचा लगाओ, सदा नहीं रह सकता। यहां कितने ही सुंदर महल बनाओ, आज नहीं कल धूल-धूसरित हो जाएंगे। इस जगत में परमात्मा को कोई कभी खींच कर ले भी आता है तो ज्यादा देर टिका नहीं पाता। जब तक खुद होता है, लंगर की तरह जहाज रुका रहता है। फिर लंगर ही न रहा, जहाज फिर अनंत में लीन हो जाता है।

लेकिन जिस जगह किसी बुद्धपुरुष ने कभी तीर्थ निर्मित किया हो, उस जगह पुनः तीर्थ निर्मित करना बहुत आसान होता है। यही अर्थ है उस सूत्र का। कुछ तो छाप रह ही जाती है। कुछ तो हवाओं में बात रह ही जाती है। कुछ तो गूंज बाकी रह ही जाती है। यह तो मानना असंभव है कि बुद्ध ने जिस वृक्ष के नीचे बैठ कर बोधि पाई, आज भी उस वृक्ष के पत्तों में उस बोधि के हस्ताक्षर नहीं हैं। यह मानना असंभव है कि जिस बोधिवृक्ष के पास बुद्ध उठ-उठ कर टहला करते थे, क्योंकि बैठे-बैठे थक जाते ध्यान में। तो बुद्ध ने दो ध्यान विकसित किए थे... एक बैठ कर करने का ध्यान, विपस्सना और एक चल कर करने का ध्यान... चंक्रमण। दोनों एक से ही ध्यान हैं। एक में बैठ कर श्वास पर ध्यान रखना होता है और एक में चलते हुए श्वास पर ध्यान रखना होता है। तो उसी बोधिवृक्ष के पास वे पत्थर आज भी हैं, जिन पर बुद्ध के चरण न मालूम कितनी हजार बार लाखों बार पड़े होंगे। क्योंकि दिन में एक घंटा वे बैठते, फिर एक घंटा चलते; फिर एक घंटा बैठते, फिर एक घंटा चलते। यूं रोज घंटों चले होंगे। छोटा सा स्थान, वहीं वृक्ष के पास, करोड़ों बार उनके पैरों को उन पत्थरों ने छुआ होगा।

-बहुरि न ऐसा दांव-10

12 मंत्र की बजाए श्वास के प्रति जागरण सरल

कभी एक छोटा-सा प्रयोग करें तब आपको पता चलेगा कि मूर्च्छा कितनी गहरी है। कभी अपनी घड़ी को देखें, उसमें सेकेंड को कांटा है। तय कर लें कि एक मिनट तक सेकेंड के कांटे का होशपूर्वक देखेंगे। एक मिनट, ज्यादा बड़ी नहीं है। एक चक्कर सेकेंड का कांटा पूरा लगाएगा। होशपूर्वक देखेंगे। होशपूर्वक का मतलब आपको समझा दूं, ताकि आपको प्रयोग आसान हो जाए।

यह जो कांटा सेकेंड का घूम रहा है, इसको भूलेंगे नहीं एक मिनट तक, याद रखेंगे। यह सेकेंड कांटा जा रहा है, जा रहा है, साठ सेकेंड पूरे करेगा एक मिनट। आप चकित हो जाएंगे कि साठ सेकेंड में कम से कम तीन बार आप चूक जाएंगे। भूल जाएंगे कि क्या देख रहे है। कोई और ख्याल आ जाएगा। कोई और बात आ जाएगी। मन कहीं एक क्षण को छिटक जाएगा। कम से कम तीन बार। बीस सेकेंड भी खींचना मुश्किल है जाग्रत भाव को। तब आपको पता चलेगा कैसी मूर्च्छा है यह! मैं साठ सेकेंड तक एक कांटे के घूमने को भी स्मरणपूर्वक नहीं देख सकता हूं कि देखते वक्त मुझे याद बनी रहे कि मैं देख रहा हूं, कांटा घूम रहा है। कांटा घूमता रहेगा, एक सेकेंड को आप चूक जाएंगे, तब आपको फिर से याद आएगा कि अरे, मैं भूल गया! बि तक आप देखेंगे कांटा दो-चार सेकेंड आगे जा चुका। उतने'गैप', उतने अंतराल में आप कहीं और चले गये! होश यहां न रहा।

ऐसा कोई भी काम रहे हों तो होशपूर्वक करने की कोशिश करें। अलग से समय देने की कोई जरूरत नहीं है। भोजन कर रहे हैं तो होशपूर्वक करें। भोजन चबा रहे हैं तो होशपूर्वक चबाएं। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि आप कोई साधना में लगे हैं। सांख्य की साधना का पता भी नहीं चलाता सांख्य की साधना को कोई पता नहीं चलता कि कोई साधना कर रहा है कि नहीं कर रहा है। योग की साधना का पता चलता है, क्योंकि उसमें बाहर की क्रियाओं से प्रयोग करना होता है। सांख्य की तो अंतर्क्रिया है। श्वास चल रही है, इसका ही ख्याल रखें बुद्ध ने इस पर बहुत जोर दिया।

बुद्ध ने बहुत जोर दिया है इस पर कि आदमी चल रहा है, बैठा है, उठा है, लेटा है, एक चीज तो सतत चल रही है, घड़ी के कांटे की तरह। श्वास। उसको देखते रहें। श्वास भीतर गई, तो होशपूर्वक भीतर ले जाएं। श्वास बाहर गई तो होशपूर्वक बाहर ले जाएं। चूके न मौका। एक भी श्वास बिना जाने न चले। थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि आपका ज्ञान बढ़ने लगा। ये श्वास पर जितना आपका ध्यान

सजग होने लगेगा, उतना आपके भीतर ज्ञान बढ़ने लगेगा। अगर आप घंटे भर भी ऐसी स्थति बना लें कि जब चाहे घंटे भर श्वास को आते-जाते देख लें और कोई बाधा न पड़े, तो सांख्य का दरवाजा बिल्कुल निकट है। धक्का ही देने की बात है और खुल जाएगा।

बुद्ध ने श्वास पर। अनापानसतीयोग, श्वास के आने-जाने का स्मृतियोग। इस पर सारी, सारी दृष्टि बुद्ध ने इस पर खड़ी की है। बुद्ध कहते थे, इतना ही कर ले भिक्षु तो और कुछ करने की जरूरत नहीं है। यह बहुत छोटा काम लगेगा मालूम आपको। लेकिन जब घड़ी के कांटे को देखेंगे और साठ सेकेंड में तीन दफे चूक जाएंगे, तब पता चलेगा कि श्वास की इस प्रक्रिया में कितनी चूक हो जाएगी। लेकिन, शुरू करें, तो कभी अंत भी होता है। प्रारंभ करें, तो कभी प्राप्ति भी होती है। यह अंतिर्क्रिया है। यह राम-राम जपने से ज्यादा कठिन है। क्योंकि राम-राम जपने में होश रखना आवश्यक नहीं है। आदमी राम-राम जपता रहता है। यंत्रवत। होश रखना आवश्यक नहीं है। और तब ऐसी हालत बन जाती है कि वह काम भी करता रहता है, राम-राम जपता रहता है। उसे न राम-राम का पता रहता है कि मैं जप रहा हूं। जप चलता रहता है, यंत्रवंत हो जाता है। इसलिए अगर राम-राम भी जपना हो, तो राम-राम जपने में दोहरे काम करने जरूरी हैं। जप भी रहे, और जप की होश भी रहे, तो ही फायदा है। नहीं तो बेकार है।

तो बहुत लोग जप कर रहे और व्यर्थ है। उनके जप ने उनकी बुद्धि को और मंदा कर दिया है, तीव्र नहीं किया। और उनके ज्ञान को बढ़ाया नहीं, और घटाया है। इसलिए अकसर आप देखेंगे कि राम-राम जपनेवाले राम-चदरिया ओढ़े हुए लोग बुद्धि के मामले में थोड़े कम ही नजर आएंगे। ज्ञान उनका जगता हुआ नहीं मालूम पड़ता, और जंग खा गया हुआ मालूम पड़ता है। जंग खा ही जाएगी बुद्धि। क्योंकि बुद्धि का वह जो बोध है, वह जो ज्ञान है, वह सिर्फ जागरण से बढ़ता है। कोई भी क्रिया अगर मूर्च्छित की जाए, तो घटता है। और हम सब क्रियाएं मूर्च्छित कर रहे हैं। उसी में हम राम-जप भी जोड़ लेते हैं। वह भी एक मूर्च्छित क्रिया हो जाती है।

बजाय एक नई क्रिया जोड़ने के, जो क्रियाए चल रही हैं उनमें ही जागरण बढ़ाना उचित है। और अगर राम की क्रिया भी चलानी शुरू कर दी हो, तो उसमें भी जागरण ले आएं। कुछ भी करें, एक बात तय कर लें कि उसे जागकर करने की सतत चेष्टा जारी रखेंगे। आज असफलता होगी, कल असफलता होगी। कोई चिंता नहीं है। लेकिन हर असफलता से सफलता का जन्म होता है। और अगर अब ख्याल जारी रहा और सतत चोट पड़ती रही, तो एक दिन आप अचानक पाएंगे कि आप किसी भी क्रिया को समग्र चैतन्य में करने में सफल हो गये हैं। जिस दिन आप इस चैतन्य में सफल हो जाएंगे, उसी दिन सांख्य का द्वार खुल गया। और कुछ भी जरूरी नहीं है। और कोई बाहरी क्रिया जरूरी नहीं है। अंतर्गुहा में प्रवेश हो जाता है।

तब, तब हम जान लेते हैं अपने भीतर के साक्षी को, क्योंकि यह जागरण की क्रिया साक्षी की क्रिया है। जब मैं जागकर कुछ करता हूं तो मैं साक्षी जो जाता हूं, कर्ता नहीं होता। जब भी मैं सोकर कुछ करता हूं, तभी मैं कर्ता होता हूं और साक्षी नहीं होता। कुछ भी जागकर करें। भोजन कर रहे है, जागकर करें, तब आप भोजन करनेवाले नहीं रह जाएंगे। भोजन की क्रिया को देखनेवाले हो जाएंगे। रास्ते पर चल रहें हैं, जागकर चलें, तो आप चलनेवाले नहीं रह जाएंगे; जो चल रहा है, उसके आप द्रष्टा और साक्षी हो जाएंगे। तो जागरण की क्रिया बढ़ती जाए तो आपके भीतर साक्षी विकसित होता जाएगा।

-कैवल्य उपनिषद-17

13 विपस्सना ही नानक का अजपा है

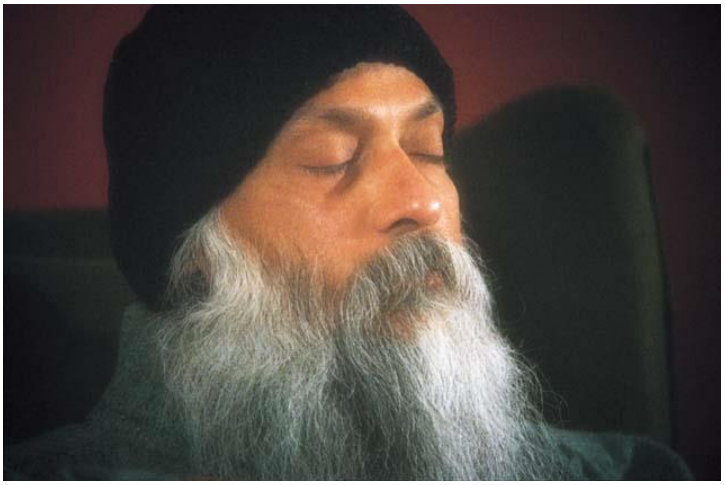

अजपा जाप का मतलब होता है कि जाप नहीं। अजपा का मतलब होता है कि जहां अब कोई शब्द न रहा--न राम, न ओंकार, न अल्लाह, कोई शब्द न रहा। अजपा का अर्थ ही यह होता है कि अब जपने को कुछ न बचा। मंत्रों के पार हो गये। मंत्र के पार हुए कि मन के पार हुए।

यह 'अजपा' शब्द नानक का है। बहुत प्यारा है! लेकिन मजा तो देखो, नानक को मानने वाले जपुजी रटे जा रहे हैं! और नानक कहते हैं अजपा और ये जपुजी रट रहे हैं। जपुजी बिल्कुल उल्टी बात हो गयी। कहां अजपा और कहां जपुजी! और जप में भी जी लगा दिया... क्या-क्या पंजाबी हैं! जप ही काफी था, कम से कम जी से तो बचाओ। उसमें और जी लगा रहे हो! समादर दे रहे हो! और नानक कहते हैं, अजपा को उपलब्ध हो जाओ।

तुम्हारे भीतर शून्य हो तब अजपा होता है। श्वास चले और तुम साक्षी होओ! श्वास भीतर आयी, तुमने देखी; श्वास बाहर गयी, तुमने देखी--बस सिर्फ तुम द्रष्टा रह जाओ श्वास के। इसको बुद्ध ने 'विपस्सना' कहा है। जिसको नानक ने अजपा कहा है उसको बुद्ध ने विपस्सना कहा है। 'विपस्सना' शब्द भी प्यारा है। इसका अर्थ है : देखना, पश्यना। पश्यना देखना। साक्षी का ही अर्थ है। बस देखते रहो श्वास का आना और जाना।

-ज्यूं मछली बिन नीर-8

14 विपस्सना और सूफी नृत्य का संगम

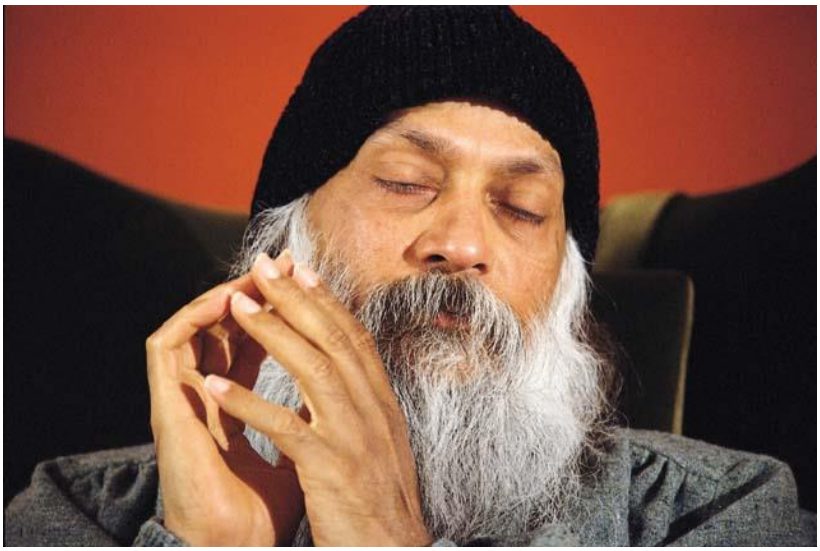

प्रश्नः भगवान, मुझे हिंदी तो बहुत आती नहीं, और कभी कुछ लिखा भी नहीं है, लेकिन जब से आप आए हैं जिंदगी में, आप साथ कविता भी ले आए हैं। कल आपने कहा कि होश से रहना, चूक मत जाना। तो आप ही बताएं, अब क्या होगा! जब इतनी पिला दी, तो होश में आने को कहते हो!

अमृता! धर्म का पहला अवतरण हृदय में, काव्य की भांति ही होता है। एक गुनगुनाहट; एक नाद। इसीलिए उपनिषद, वेद, कुरान एक अपरिसीम काव्य से अभिभूत हैं। ऋषि का मौलिक अर्थ तो कवि ही होता था। ऋषि यानी वह, जिसने कविता केवल लिखी नहीं बल्कि देखी भी। काव्य का द्रष्टा। जिसने सौंदर्य को अनुमान ही नहीं किया, अनुभव भी किया।

धर्म की अनुभूति होती ही नहीं किसी और ढंग से।

धर्म बुद्धि नहीं है, हृदय है। बुद्धि तो भाषा समझती है तर्क की, हृदय तर्क की भाषा नहीं समझता। वहां तर्क की कोई गति नहीं है। वहां तर्क का तीर न कभी पहुंचा है न कभी पहुंचेगा। हृदय तो समझता है प्रेम को, प्रीति को। प्रीति की तरंगें वहां तक पहुंच जाती हैं। तर्क तो पत्थरों की तरह बोझिल है, भारी है। उठ ही नहीं पाता। प्रेम में पंख हैं, प्रेम उड़ान भर लेता है। और काव्य हृदय में उठी प्रेम की पुलक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ...

अमृता! जब मैं कहता हूं : होश, तो उस होश में बेहोशी की रसधार बहनी है। होश क्या जिसमें बेहोश होने की क्षमता न हो! होश क्या जो नाच न सके! होश क्या जो मदमस्त न हो सके! होश क्या जो होली में गुलाल न उड़ा सके, दिवाली में दीए न जला सके, पैरों में घूंघर न बोध सके, बांसुरी न बजा सके! होश क्या जिसमें खुमारी न हो! होश क्या जो शराब को मात न कर दे! और बेहोशी क्या जिसमें होश का दीया न जलता हो, होश का फूल न खिला हो, होश की सुगंध न उठती हो! बेहोशी क्या जिसमें होश का माधुर्य और प्रसाद न हो! ये दोनों जहां मिलते हैं, वहां एक अपूर्व संगम पैदा होता है। उस संगम को ही मैं संन्यास कहता हूं।

अमृता, तू ऐसी ही संन्यासिन हो! ऐसे ही प्रत्येक संन्यासी को होना है। तू कहती है, जब इतनी पिला दी तो होश में आने को कहते हो! इसीलिए तो कहता हूं, इतनी पिला दी इसीलिए कहता हूं, कि अब कहीं बेहोशी ही न रह जाए! नहीं तो आधा हो गया काम, आधे

का क्या होगा? इसलिए विपस्सना जो कर रहा है, उसे एक-न-एक दिन कहता हूं कि जाओ और सूफी नृत्य में सम्मिलित हो जाओ। जो सूफी नृत्य कर रहा है उसे एक-न-एक दिन कहता हूं कि अब विपस्सना करो।

तुम जानकर हैरान होओगे कि इस परिवार में, संन्यासियों के इस परिवार में सूफी नृत्य को जो संन्यासिन मार्गदर्शन देती है, अनिता; वह मौलिक रूप से विपस्सना के योग्य है। तात्विक रूप से उसका व्यक्तित्व विपस्सना के योग्य है। और जो विपस्सना में मार्गदर्शन करती है, प्रदीपा; उसका व्यक्तित्व सूफियों का है। और दोनों चकित कि उनको मैंने क्यों यह काम दिया है? विपस्सना दिया है उसको मार्गदर्शन करने को, जिसका मौलिक रूप सूफी का है। और सूफी नृत्य दिया है जिसका रस विपस्सना की तरफ है। जानकर। क्योंकि इन दोनों को कहीं जोड़ना है। सूफियों को विपस्सना देनी है, बौद्धों को सूफियों का रस देना है। तुम्हारी यह क्षमता होनी चाहिए कि तुम्हारे भीतर विरोधाभास आकर मिल जाएं, एक हो जाएं, अपना विरोधाभास खो दें। तुम्हारी यह क्षमता होनी चाहिए कि शांत बैठो तो बुद्ध की शांति और नाचो तो मीरा का नृत्य। न तो मीरा के नृत्य में कंजूसी करनी पड़े बुद्ध के कारण, न बुद्ध के मौन में कंजूसी करनी पड़े मीरा के कारण। जब तुम इन दो अतियों के बीच सुगमता से डोल सको, जैसे घड़ी का पेंडुलम डोलता है, जैसे सावन में झूले डोलते हैं, जब इन दो अतियों के बीच तुम सावन का झूला बन जाओ, तब जानना कि तुम्हारे जीवन में पूर्ण मनुष्य का आविर्भाव हुआ।

अब तक पूर्ण मनुष्य जमीन पर पैदा नहीं हो सका है। अभी तक आंशिक मनुष्य पैदा हुए। क्योंकि हमने अंश को बहुत मूल्य दे दिया और अंश को ही पूर्ण मान लिया। अंश ही इतने बड़े हैं कि लोग उनसे ही तृप्त हो जाते हैं। मैं तुम्हें ऐसी अतृप्ति देना चाहता हूं कि तुम अंश से नहीं, अंशी से ही तृप्त होना। पूर्ण को पाए बिना नहीं रुकना है, चले चलो, चले चलो...। तुम बेहोश होने लगोगे तो झकझोरूंगा और कहूंगा कि होश में आओ! और तुम ज्यादा होश में आने लगोगे तो धक्का दूंगा और कहूंगा कि जरा डोलो, नाचो! एकदम होश में ही आकार सूख मत जाओ! जरा कल्पना करो इन दोनों के मध्य नाचते हुए शून्य की, गीत गाते हुए मौन की। तब तुम्हारे भीतर परमात्मा अपना सारा रस और सारी ज्योति उड़ेल देगा। तब उसका रस ज्योतिर्मय होगा।

-सपना यह संसार-12 का अंश

15 सक्रिय-ध्यान : खेत-सफाई, विपस्सना : बीज-बुवाई

प्रश्नः ओशो, लगता है आचार्य श्री तुलसी आपके प्रवचनों और वक्तव्यों से काफी तिलमिला गए हैं, क्योंकि कई बार बहुत लोगों के बीच में आपने कहा कि आचार्य तुलसी आपसे एकांत में ध्यान सीखना चाहते थे। और उनके युवराज शिष्य मुनि नथमल को आपने मुनि थोथूमल कहा। इससे गुरु-शिष्य की प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुंचा है और बौखलाहट में उन्होंने संपूर्ण महाराष्ट्र में आपकी विकृत विचार-धारा का सामना और शुद्धिकरण करने के लिए अपनी साध्वियों के पांच समूह जगह-जगह भेजे हैं। ये समूह शास्त्र-शुद्ध प्रेक्षा-ध्यान शिविर आयोजित करेंगे। उनकी एक सैंतालीस वर्षीय साध्वी श्री चांदकुमारी दस हजार मील की यात्रा करके पूना पधारी हैं। ओशो, यह प्रेक्षा-ध्यान क्या है? इस विधि से क्या आत्म-शुद्धि व पर-शुद्धि हो सकती है? और कृपया यह भी बताएं कि क्या भगवान महावीर का ध्यान भी इसी प्रकार का था?

(नोटः उपरोक्त प्रश्न के संदर्भ में ओशो ने बताया कि आचार्य तुलसी को सक्रिय ध्यान और विपस्सना ध्यान की विधि मैंने ही समझाई थी। वे विधि का नाम बदलकर दूसरों को सिखाने लगे। विपस्सना को प्रेक्षा कहने लगे। दोनों शब्दों का भावार्थ एक ही है- द्रष्टा भाव। सदगुरु ओशो के उत्तर का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है-)

सक्रिय-ध्यान तो किसी शास्त्र में उपलब्ध नहीं है। वह तो मेरा आविष्कार है। न जैन शास्त्र में है, न किसी हिंदू शास्त्र में है। इसलिए उसके लिए तो कोई शास्त्रीय प्रामाणिकता खोजी नहीं जा सकती। वह तो मेरी निजी अनुभूति के आधार पर खड़ा है।

और मेरा मानना है कि बीसवीं सदी में किसी भी व्यक्ति को अगर ध्यान की ऊंचाइयों पर जाना है, तो सक्रिय-ध्यान से ही शुरू करना पड़ेगा। क्योंकि जो हजार तरह की दमित वासनाएं भीतर पड़ी हैं, उनको सक्रिय-ध्यान उलीच कर बाहर कर देता है।

और दूसरा ध्यान मैंने उनसे कहा था-बुद्ध का प्रसिद्ध ध्यान-विपस्सना। वह भी जैन शास्त्रों में नहीं है। वह बुद्ध का है। सक्रिय-ध्यान मेरा है; विपस्सना बुद्ध का है। ये दो ध्यान मैंने उनसे कहे थे। क्योंकि ये दोनों ध्यान एक दूसरे को संतुलित कर देते हैं। सक्रिय-ध्यान अकेला हो, तो उलीचने के तो काम में आ जाएगा, लेकिन फिर भरोगे कैसे! कचरे को तो अलग करना है, जरूर अलग करना है; लेकिन हीरे-जवाहरात! कंकड़-पत्थर अलग करने हैं, लेकिन कंकड़-पत्थर अलग करने से ही हीरे-जवाहरात नहीं आ जाएंगे। सक्रिय-ध्यान आधा हिस्सा है। प्राथमिक है। एकदम अनिवार्य है। लेकिन जब सक्रिय-ध्यान पूरा हो जाए, तब विपस्सना के बीज बोने हैं।

और मैं निश्चित कहता हूं कि विपस्सना मेरी खोज नहीं है। जो जिसकी है, उसकी है। वह गौतम बुद्ध की खोज है। और मुझे कोई एतराज नहीं है-गौतम बुद्ध की खोज का उपयोग कर लेने में। क्योंकि किसी की बपौती तो नहीं हैं ये खोजें। हां, इतनी जरूर ईमानदारी होनी चाहिए कि जिसकी खोज हो, हम कम से कम उसकी कहने तक, उसकी बताने तक तो ईमानदारी प्रकट करें!

विपस्सना का अर्थ है : निरीक्षण। विपस्सना शब्द का अर्थ होता है-देखना; पश्यना-पश्य। हिंदी में भी हमारे पास शब्द है-दरस-परस; देखना। बद्ध ने कहा : सिर्फ अपने विचारों को देखते रहो। देखते-देखते ही वे शांत हो जाते हैं। बुद्ध की इसी खोज को कृष्णमूर्ति च्वाइसलेस अवेयरनेस कहते हैं। यद्यपि वे भी स्वीकार नहीं करते कि यह बुद्ध की खोज है। उनके इस स्वीकार न करने में मैं थोड़ी-सी बेईमानी की झलक पाता हूं। यूं वे विरोध करते हैं सारे अतीत का, लेकिन जिसको वे चुनाव-रहित सजगता कहते हैं, वह बुद्ध की खोज है।

और कृष्णमूर्ति को बचपन से ही एनी बीसेंट, लीड बीटर और अन्य थियोसोफिस्टों ने बुद्ध के ही मार्ग पर चलाया था। क्योंकि उन सब की चेष्टा यही थी कि बुद्ध का जो आने वाला अवतार है, मैत्रेय, कृष्णमूर्ति उसी अवतार के लिए तैयार किए जा रहे हैं। जब कृष्णमूर्ति तैयार हो जाएंगे, परिपूर्ण शुद्ध हो जाएंगे, तो बुद्ध की आत्मा उनमें उतरेगी-और वे जगत-गुरु की तरह सारे मनुष्य जाति को पुनः धर्म से ओतप्रोत कर देंगे। इसलिए बुद्ध की प्रक्रिया से ही उनको बचपन से अवगत कराया गया। जब वे केवल नौ वर्ष के थे, तब से उनको विपस्सना करवाई गई। मगर कृष्णमूर्ति भी अतीत के साथ अपना संबंध तोड़ कर बताना चाहते हैं, कि मेरा कोई अतीत से संबंध नहीं है। इसलिए वे भी यह नहीं कह सकते कि जिसको मैं च्वाइसलेस अवेयरनेस कह रहा हूं, वह केवल नया शब्द है; बात पुरानी है। बोतल नई है, शराब पुरानी है! और शराब तो जितनी पुरानी हो, उतनी ही कीमती होती है। बोतलें बदलते रहो। बोतलें खराब हो जाती है, टूट जाती हैं, फूट जाती हैं; कोई फिक्र नहीं।

लेकिन हमें इतनी निष्ठा होनी चाहिए कि हम कह सकें जो जिसका है।

तो मैंने उनको कहा था कि सक्रिय-ध्यान मेरी खोज। और बुद्ध उसकी खोज कर भी नहीं सकते थे; न महावीर कर सकते थे। क्योंकि उस सदी में जरूरत न थी। लोग इतने दमित न थे। लोग सरल थे। स्वाभाविक थे, सहज थे। जीवन ज्यादा प्राकृतिक था, प्रकृति के करीब था, आज तो जीवन प्रकृति से बहुत दूर हो गया है। और सभ्यता के ढाई हजार वर्षों ने आदमी के भीतर इतने कीड़े-मकोड़े दबा कर रख दिए हैं, सांप-बिच्छू छिपा कर रख दिए हैं कि जब तक हम उनको न निकाल फेंके, जब तक हम अपने पात्र की गंदगी को सफा न कर लें, तब तक विपस्सना जैसा ध्यान हो नहीं सकता।

विपस्सना अपूर्व प्रक्रिया है। ध्यान के जगत में उससे बहुमूल्य कुछ भी नहीं है। लेकिन वह महावीर की ध्यान-पद्धति नहीं है।

तो मैंने उनको कहा था, सक्रिय-ध्यान करवाएं। सक्रिय- ध्यान में तो उनकी छाती कंपी। उन्होंने कहा कि चीखना- चिल्लाना, नाचना-कूदना, यह तो मुश्किल होगा! हम इसके लिए शास्त्र में कहां से समर्थन खोजेंगे? है भी नहीं समर्थन-मैंने कहा। शास्त्र में समर्थन खोजा भी नहीं जा सकता। लेकिन हर चीज के लिए शास्त्र में समर्थन हो भी नहीं सकता। रेलगाड़ी के लिए कोई समर्थन है? हवाई जहाज के लिए कोई समर्थन है? अरे, साईकिल तक के लिए कोई समर्थन नहीं है! मगर साईकिल पर मजे से चढ़े चले जा रहे हो।

मगर समर्थन खोजने वालों की भी एक धुन है। वे हर चीज में समर्थन खोजते हैं!

एक ईसाई समझा रहा था बाइबिल के संबंध में और कह रहा था, बाइबिल में सब कुछ है। परमात्मा ने हर चीज बनाई।

एक छोटा-सा बच्चा खड़ा हो गया और उसने कहा कि यह मैं नहीं मान सकता। मैंने भी पढ़ी है, आपने जो बताई बात। लेकिन परमात्मा ने रेलगाड़ी कहां बनाई? रेलगाड़ी किसने बनाई?

थोड़ा तो झिझका पादरी, मगर चालबाज होते हैं धार्मिक लोग। फिर उसने कहा कि साफ लिखा है बाइबिल में कि परमात्मा ने सब सरकती हुई चीजें बनाईं। और रेलगाड़ी भी सरकती है। उसी में आ गई।

अब देखते हो तरकीब! सरकती हुई चीजें बनाईं, मतलब केंचुए, छिपकलियां, सांप। सरकती हुई चीजों में यहां तक तो ठीक था। मगर रेलगाड़ी-सरकती हुई चीजों में बना दी! उसकी गिनती सरकती हुई चीजों में हो गई!

तो मैंने कहा कि सक्रिय-ध्यान के लिए तोड़-फोड़ करें, तो कुछ खोज की जा सकती है। जैसे पतंजलि में भस्त्रिका प्राणायाम का एक रूप है। तो सक्रिय-ध्यान का पहला चरण भस्त्रिका से जोड़ा जा सकता है जिसमें श्वास को गहरा लेना और फेंकना है। चाहें ही खोजना, तो भस्त्रिका से पहला चरण जुड़ सकता है।

दूसरे चरण के लिए पतंजलि में कोई उपाय नहीं मिलेगा। लेकिन समस्त शास्त्रों में रेचन शब्द का प्रयोग हुआ है। रेचन का अर्थ होता है-साफ करना, निकालना, फेंक देना, वमन कर देना। इसलिए जिन चीजों से पेट की सफाई की जाती है, उनको रेचक कहते हैं। तो मैंने कहा, रेचन शब्द में अगर खोजना चाहें, तो खोज लेना, दूसरा चरण मिल जाएगा।

तीसरे चरण के लिए हिंदू शास्त्रों में तो कुछ भी नहीं है, लेकिन इस्लाम में उपाय है। अगर हिम्मत हो तो तीसरा चरण जो हू-हू का है, वह अल्लाहू का हिस्सा है। वह सूफियों की ध्यान की पद्धति है। जब कोई व्यक्ति अल्लाहू-अल्लाहू-अल्लाहू-अल्लाहू-इस तरह की सतत् पुनरुक्ति करता है, इतने जोर से करता है कि अल्लाहू-अल्लाहू एक दूसरे के ऊपर चढ़ जाएं, जैसे कि रेलगाड़ी के डब्बे एक दूसरे के ऊपर चढ़ जाएं, जैसे मालगाड़ी के डब्बे एक दूसरे के ऊपर चढ़ जाएं। तो धीरे-धीरे आखिर में उसे अल्लाहू-अल्लाहू पूरा सुनाई नहीं पड़ता। हू-हू-हू ही सुनाई पड़ने लगता है। अल्ला दब जाता है, एक हू से दूसरे हू पर छलांग लग जाती है। एक अल्लाह एक हू के भीतर दब जाता है। आखिर में हू-हू-हूंकार रह जाती है।

तो मैंने कहा, अगर खोजना ही हो, तो इस तरह खोज सकते हो। मगर यह बहुत जगह से खोजना पड़ेगा। और इतनी हिम्मत भी आपकी नहीं हो सकती कि पतंजलि को भी आप स्वीकार करो, रेचन की विधियां भी आप स्वीकार करो, जिनका जैन शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। और फिर मुश्किल तो पड़ जाएगी अल्लाहू के साथ। जिसका कि हिंदू, जैन, बौद्ध-किसी शास्त्र में उल्लेख नहीं है। जो कि इस्लाम की प्रक्रिया है। मगर अगर चाहो, तो हूंकार शब्द है हमारे पास। हूंकार का अर्थ होता है, हू की आवाज। बिठालना ही हो किसी तरह, तो बिठाल लेना। मगर यह सब जबरदस्ती होगी।

यह सक्रिय-ध्यान तो बीसवीं सदी की खोज है। और बीसवीं सदी के लिए है। और आने वाली सदियों के लिए रोज-रोज ज्यादा मूल्यवान होता जाएगा। मगर यह बगीचे को साफ करने जैसा है। इसकी सफाई के बाद विपस्सना। इसकी सफाई पूरी हो जाए, तो फिर विपस्सना के फूल खिलने में जरा भी अड़चन नहीं है।

विपस्सना का अर्थ है-मन की समस्त प्रक्रियाओं को-भावनाओं को, विचारों को, वासनाओं को, ऐषणाओं को सिर्फ साक्षी भाव से देखना। इस साक्षी भाव में एक जादू है। और वह जादू यह है कि अगर मन की प्रक्रियाओं को साक्षी भाव से देखा जाए, तो वे धीरे-धीरे अपने आप तिरोहित हो जाती हैं। उनको हमारा अगर सक्रिय सहयोग न मिले तो उनके प्राण समाप्त हो जाते हैं। वे जीती हैं हमारे सहयोग से। और जब हम देखने में लग जाते हैं, तो हमारी ऊर्जा देखना बन जाती है। हमारी ऊर्जा फिर विचारणा नहीं बनती, तो विचार

के प्राण निकलने लगते हैं। थोड़े दिन में सांप मर जाता है, खोल पड़ी रह जाती है। थोड़े दिन में खोल भी समाप्त हो जाती है। और एक अपूर्व घड़ी आती है, जब शून्य रह जाता है। उस शून्य में पूर्ण का साक्षात्कार है।

आचार्य तुलसी ने विपस्सना को ही प्रेक्षा कहना शुरू कर दिया। प्रेक्षा का मतलब भी देखना ही होता है। प्रेक्षा, प्रेक्षण, प्रेक्षक, आब्जर्वर, निरीक्षण। विपस्सना की पद्धति जैन-पद्धति नहीं है। जैन पद्धति बड़ी भिन्न है। वही तो महावीर और बुद्ध का विवाद था। इसलिए विपस्सना शब्द का उपयोग तो तुलसी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि विपस्सना शब्द का उपयोग करेंगे, तो जैन फौरन उपद्रव खड़ा कर देंगे कि यह तो बौद्ध पद्धति है! और बौद्धों और जैनों की तो आज ढाई हजार साल पुरानी विवाद की स्थिति है, दुश्मनी है। जितनी जैनों और बौद्धों में कलह हुई है, उतनी हिंदू और जैनों में नहीं हुई। स्वाभाविक था, क्योंकि बुद्ध और महावीर दोनों समसामायिक थे, एक साथ मौजूद थे। और एक साथ एक ही प्रदेश बिहार में अपना प्रचार कर रहे थे। तो रोज यह होता था कि कोई आदमी महावीर के डेरे से बुद्ध के डेरे में चला जाता; कोई आदमी बुद्ध के डेरे से महावीर के डेरे में चला जाता। बड़ा कठोर संघर्ष था। और विधियां बिल्कुल अलग-अलग थीं।

महावीर की विधि को तो अगर कुछ कहना हो, तो वह ध्यान की विधि कम है, तपश्चर्या की विधि ज्यादा है। महावीर ज्यादा शरीरवादी हैं। बुद्ध ज्यादा मनोवैज्ञानिक हैं।

-जो बोलैं तो हरिकथा-11

16 समथ समाधि और विपस्सना समाधि

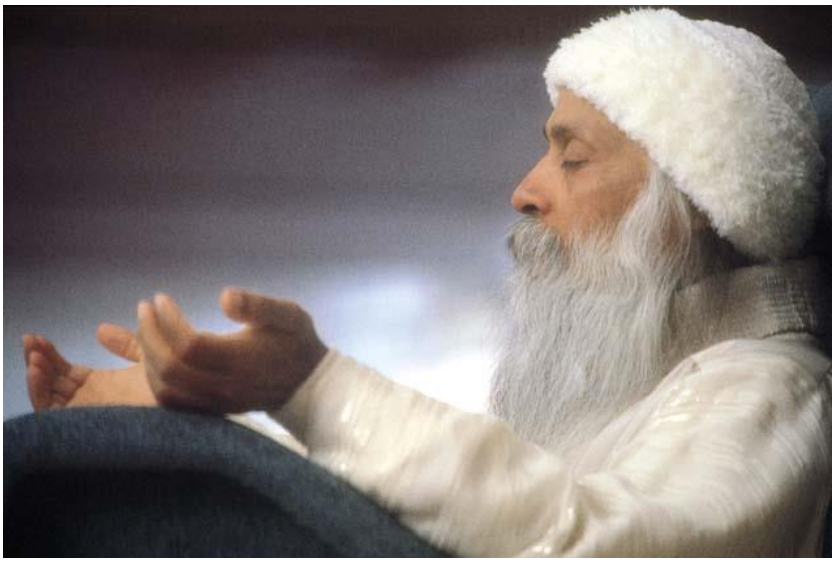

छिंद सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।

संखारानं खयं भ्त्वा अकतग्भूसि ब्राह्मण।।

'हे ब्राह्मण, पराक्रम से तृष्णा के स्रोत को काट दे और कामनाओं को दूर कर दे। हे ब्राह्मण, संस्कारों के क्षय को जानकर तुम अकृत--निर्वाण--का साक्षात्कार कर लोगे।'

बुद्ध ने कहा : जैसा मैं हूं, ऐसा ही तू भी हो सकता है। बस, अब कामनाओं को एक झटके में काट दे। अब दुबारा कामना न करना। फिर शूद्र मत हो जाना। इस घड़ी को ठीक परख ले, पहचान ले, पकड़ ले। अब यह घड़ी तेरी जिंदगी बने। अब यह घड़ी तेरी पूरी जिंदगी का सार हो जाए। इसी के केंद्र पर तेरे जीवन का चाक घूमे।

'हे ब्राह्मण...।'

सुनते हैं फर्क? अभी कुछ ही देर पहले, कुछ ही घंटों पहले कहा था : वक्कलि हट! हट जा। हट जा वक्कलि! हटवा दिया था। इसके पहले कभी बुद्ध ने उसको ब्राह्मण कहकर संबोधन नहीं किया था। वक्कलि। आज पहली दफा कहा : हे ब्राह्मण! आज वह ब्राह्मण हुआ है।

'छिंद सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।'

इस घड़ी को पहचान, इस घड़ी को पकड़। कामनाओं को काट; तृष्णाओं को उच्छेद कर दे; संस्कारों का क्षय हो जाने दे। अब यह जो शून्य तेरे भीतर घड़ीभर को उतरा है, यही तेरी नियति हो जाए, यही तेरा स्वभाव हो जाए, तो तू अकृत को जान लेगा।

अकृत अर्थात निर्वाण। अकृत--जो किए से नहीं होता। अकृत--जो करने से कभी हुआ नहीं; जो सब करना छोड़ देने से होता है। जो समर्पण में होता है, संकल्प से नहीं होता।

'जब ब्राह्मण दो धर्मों में पारंगत हो जाता है...।'

कौन से दो धर्म? एक धर्म है, समथ। और दूसरा धर्म है, विपस्सना।

'तब उस जानकार के सभी संयोग--बंधन--अस्त हो जाते हैं।'

इन दोनों शब्दों को समझ लेना जरूरी है।

बुद्ध ने दो तरह की समाधि कही है : समथ समाधि और विपस्सना समाधि। समथ समाधि का अर्थ होता है : लौकिक समाधि। और विपस्सना समाधि का अर्थ होता है : अलौकिक समाधि। समथ समाधि का अर्थ होता है : संकल्प से पायी गयी समाधि--योग से, विधि से, विधान से, चेष्टा से, यत्न से। और विपस्सना का अर्थ होता है : सहज समाधि। चेष्टा से नहीं, यत्न से नहीं, योग से नहीं, विधि से नहीं--बोध से, सिर्फ समझ से। विपस्सना शब्द का अर्थ होता है : अंतर्दृष्टि।

फर्क समझना। तुमने सुना कि क्रोध बुरा है। तो तुमने क्रोध को रोक लिया। अब तुम क्रोध नहीं करते हो। तो तुम्हारे चेहरे पर एक तरह की शांति आ जाएगी। लेकिन चेहरे पर ही। भीतर तो क्रोध कहीं पड़ा ही रहेगा। क्योंकि तुमने दबा दिया है सुनकर। अगर तुम्हारी समझ में आ गया कि क्रोध गलत है--शास्त्र कहते हैं, इसलिए नहीं; बुद्ध कहते हैं, इसलिए नहीं; मैं कहता हूं, इसलिए नहीं--तुमने जाना अपने जीवंत अनुभव से, बार-बार क्रोध करके कि क्रोध व्यर्थ है। यह प्रतीति तुम्हारी गहन हो गयी; इतनी गहन हो गयी कि इस प्रतीति के कारण ही क्रोध असंभव हो गया; तुम्हें दबाना न पड़ा। तुम्हें विधि-विधान न करना पड़ा। तुम्हें अनुशासन आरोपित न करना पड़ा। तो दूसरी दशा घटेगी। तब तुम्हारे भीतर भी शांति होगी, बाहर भी शांति होगी।

समथ समाधि में बाहर से तो सब हो जाता है, भीतर कुछ चूक जाता है। विपस्सना समाधि पूरी समाधि है। बाहर भीतर एक जैसा होता है; एकरस हो जाता है।

जैसे एक आदमी योगासन साधकर बैठ गया। अगर वर्षों अभ्यास कर लोगे, तो कसरत की तरह योगासन सध जाएगा। योगासन तो साधकर बैठ गए बिल्कुल पत्थर की मूर्ति की तरह। हिलते ही नहीं! चींटी चढ़ती है; पता उसका लेते ही नहीं। मच्छड़ काटता है; फिक्र नहीं है। बैठे, तो बैठे। घंटों बैठे हैं! लेकिन भीतर मन चल रहा है।

अभ्यास कर लिया। अब मच्छड़ का भी अगर रोज-रोज अभ्यास करोगे...। काटने दो--काटने दो--काटने दो। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हारी चमड़ी संवेदना खो देगी। चींटी चढ़ती रहेगी, काटती रहेगी, तुम्हें पता नहीं चलेगा। चमड़ी कठोर हो गयी अभ्यास से।

बाहर से तो तुम मूर्ति बन गए, लेकिन भीतर? भीतर बाजार भरा है।

फिर एक और तरह का आसन है। वही असली आसन है। तुम्हारा मन थिर हो गया। चूंकि मन थिर हो गया, इसलिए शरीर नहीं कंपता। तुम्हारा मन शांत है, इसलिए शरीर को कंपाने की कोई जरूरत नहीं है। तब तुम शांत बैठे--यह और ही बात हो गयी।

इसलिए पहली को बुद्ध ने लौकिक कहा, दूसरी को अलौकिक। पहली से तुम ब्राह्मण तक नहीं पहुंच पाओगे। पहली से क्षत्रिय तक। संकल्प; जूझते हुए; लड़ते हुए; प्रयास से। दूसरी से तुम ब्राह्मण होओगे। प्रसाद से।

इसलिए बुद्ध ने कहा : जो दो धर्मों को जान लेता, समथ और विपस्सना, वह पहुंच गया।

पहले आदमी को समथ से जाना पड़ता है। फिर समथ की हार पर विपस्सना का जन्म होता है।

ऐसा ही बुद्ध को हुआ। छह वर्ष तक उन्होंने जो साधा, वह समथ समाधि थी। फिर छह वर्ष के बाद, उस आखिरी रात जो घटा, वह विपस्सना समाधि थी।

'जिसके पार, अपार और पारापार नहीं है, जो वीतभय और असंग है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।'

किसे ब्राह्मण कहता हूं? उसे जो तीन चीजों से दूर निकल गया है। पार का अर्थ होता है स्थूल; आंख, कान, नाक से जो देखा जाता है; जिसकी सीमा है--पार। अपार का अर्थ होता है जिसकी सीमा नहीं है; जो बड़ा है; सूक्ष्म है, स्थूल नहीं है। रूप, रस, गंध से, जो इंद्रियों से नहीं जाना जाता है, मगर मन से जाना जाता है।

जैसे तुमने एक फूल देखा। इंद्रियां सिर्फ इतना ही कह सकती हैं कि लाल है। बड़ा है। सुगंधित है। ये इंद्रियां कह रही हैं। यह पार है। जब तुम कहते हो : सुंदर है, तो कोई इंद्रिय तुम्हारे पास नहीं है सुंदर कहने वाली। सुंदर कहने वाला मन है। कोई इंद्रिय नहीं बता सकती तुमको कि फूल सुंदर है। कैसे बताएगी? इंद्रिय तो सिर्फ खबर दे देती है। इंद्रिय तो ऐसे है, जैसे कैमरा। कैमरा यह नहीं कह सकता कि सुंदर है, कि असुंदर। कैमरा तो उतार देता है, जो है। सामने गुलाब का फूल है; इंद्रिय खबर दे देती है। आंखें कहती हैं कि लाल फूल है; गुलाब का है। नाक कहती है : सुगंधित है। मगर सुंदर! जब तुम सुंदर कहते हो--तो अपार।

तो रस, रूप, गंध, सौंदर्य--ये जो हैं, ये सूक्ष्म अनुभव हैं मन के। इंद्रियों के अनुभव--पार। मन के अनुभव--जो कि आत्मा और इंद्रिय के मध्य में है--अपार। और फिर पारापार। पार और अपार दोनों से भी पार, दोनों के आगे--फिर आत्मा का अनुभव है।

और जो इन तीनों से पार हो जाता है...। वह आत्मा का अनुभव क्या है? मैं का अनुभव--अत्ता। इसलिए बुद्ध ने कहा : आत्मा नहीं--अनत्ता। मैं को भी जाने दो। इंद्रियां गयीं; मन गया; मैं को भी जाने दो। पार से पार; अपार से पार; पार-अपार दोनों से पार। फिर जो शेष रह जाता है शून्य; वहां मैं का भाव भी नहीं है। उसे जो जान लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

और जो उसे जान लेता है, स्वभावतः वीतभय हो जाता है। फिर उसे क्या भय! अब उसके पास कुछ बचा नहीं, जिसे छीन लोगे। उसने सब स्वयं ही छोड़ दिया है। अब तो शून्य बचा, जिसे कोई छीन नहीं सकता; जिसे छीनने का कोई उपाय नहीं है। अब तो वही बचा, जिसकी मृत्यु नहीं हो सकती। इसलिए भय कैसा! वह अभय को उपलब्ध हो जाता है।

-एस धम्मो सनंतनो-117

17 श्वास देखते-देखते शांति व साक्षी

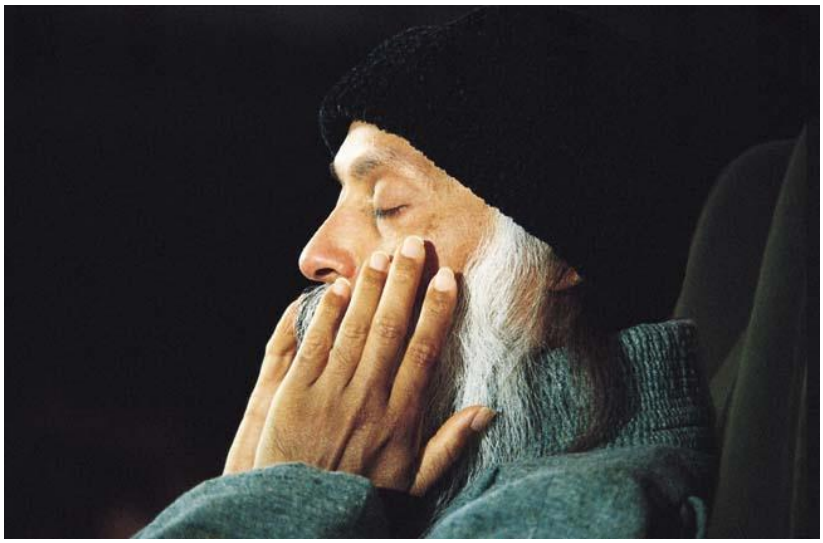

मन सतत परिवर्तनशील है, और साक्षी सतत अपरिवर्तनशील है। इसलिए साक्षीभाव मन का हिस्सा नहीं हो सकता। और फिर, मन की जो-जो क्रियाएं हैं, उनको भी आप देखते हैं। आपके भीतर विचार चल रहे हैं, आप शांत बैठ जायें, आपको विचारों का अनुभव होगा कि वे चल रहे हैं; आपको दिखायी पड़ेंगे, अगर शांत भाव से देखेंगे तो विचार वैसे ही दिखाई पड़ेंगे, जैसे रास्ते पर चलते हुए लोग दिखायी पड़ते हैं। फिर अगर विचार शून्य हो जायेंगे, विचार शांत हो जायेंगे, तो यह दिखायी पड़ेगा कि विचार शांत हो गये हैं, शून्य हो गये हैं; रास्ता खाली हो गया है। निश्चित ही जो विचारों को देखता है, वह विचार से अलग होगा। वह जो हमारे भीतर देखने वाला तत्व है, वह हमारी सारी क्रियाओं से, सबसे भिन्न और अलग है।

जब आप श्वास को देखेंगे, श्वास को देखते रहेंगे, देखते-देखते श्वास शांत होने लगेगी। एक घड़ी आयेगी, आपको पता ही नहीं चलेगा कि श्वास चल भी रही है या नहीं चल रही है। जब तक श्वास चलेगी, तब तक दिखायी पड़ेगा कि श्वास चल रही है; और जब श्वास नहीं चलती हुई मालूम पड़ेगी, तब दिखाई पड़ेगा कि श्वास नहीं चल रही है लेकिन दोनों स्थितियों में देखने वाला पीछे खड़ा हुआ है।

यह जो साक्षी है, यह जो विटनेस है, यह जो अवेयरनेस है पीछे, बोध का बिंदु है- यह बिंदु मन के बाहर है; मन की क्रियाओं का हिस्सा नहीं है। क्योंकि मन की क्रियाओं को भी वह जानता है। जिसको हम जानते हैं, उससे अलग हो जाते हैं। जिसको भी आप जान सकते हैं, उससे आप अलग हो सकते हैं; क्योंकि आप अलग हैं ही। नहीं तो उसको जान ही नहीं सकते। जिसको आप देख रहे हैं, उससे आप अलग हो जाते हैं, क्योंकि जो दिखायी पड़ रहा है, वह अलग होगा और जो देख रहा है, वह अलग होगा।

साक्षी को आप कभी नहीं देख सकते। आपके भीतर जो साक्षी है, उसको आप कभी नहीं देख सकते। उसको कौन देखेगा? जो देखेगा, वह आप हो जायेंगे और जो दिखायी पड़ेगा, वह अलग हो जायेगा। साक्षी आपका स्वरूप है। उसे आप देख नहीं सकते। क्योंकि देखनेवाला, आप अलग हो जायेंगे, तो फिर वही साक्षी होगा जो देख रहा है। जो दृश्य बन जायेगा, आब्जेक्ट बन जायेगा, वह फिर आत्मा नहीं रहेगी।

साक्षीभाव जो है, वह आत्मा में प्रवेश का उपाय है। असल में पूर्ण साक्षी स्थिति को उपलब्ध हो जाना स्वरूप को उपलब्ध हो जाना है।

साक्षी मन की कोई क्रिया नहीं है। और जो भी मन की क्रियाएं हैं, वे फिर ध्यान नहीं होंगी। इसलिए मैं जप को ध्यान नहीं कहता हूं। वह मन की क्रिया है। किसी मंत्र को स्मरण करने को ध्यान नहीं कहता हूं, वह भी मन की क्रिया है। किसी पूजा को, किसी पाठ को ध्यान नहीं कहता हूं; ये सब मन की क्रियाएं हैं। सिर्फ एक ही आपके भीतर रहस्य का मार्ग है, जो मन का नहीं है- वह साक्षी का है। जिस-जिस मात्रा में आपके भीतर साक्षी का भाव गहरा होता जायेगा, आप मन के बाहर होते जायेंगे। जिस क्षण साक्षी का भाव पूरा प्रतिष्ठित होगा, आप पायेंगे : मन नहीं है।

-चल हंसा उस देश-1

18 श्वास के कर्ता नहीं, साक्षी बनो

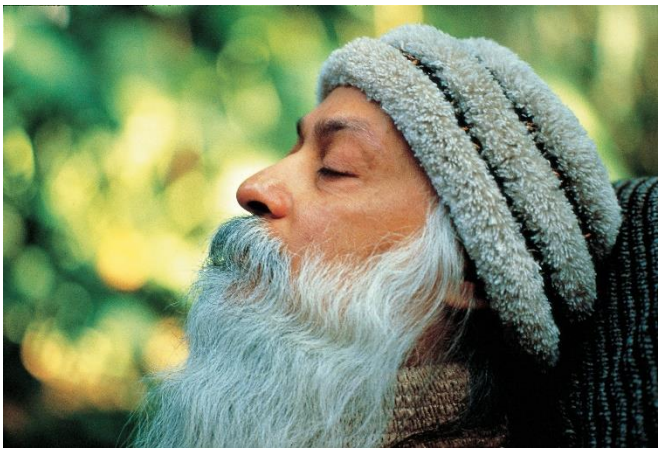

जब भी हम कर्म के कर्ता बनते हैं तब साक्षी को खोकर बनते हैं। साक्षी की कीमत पर बनते हैं। अगर हम कर्म के सिर्फ अभिनेता रह जाएं, तो कर्ता खो जाता है, और कर्ता की कीमत पर साक्षी उपलब्ध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि आप दो में एक ही सकते हैं। या तो कर्ता, या साक्षी।

और हम सब कर्ता हैं। जो भी हम करते हैं, उससे हम तत्काल अपने अहंकार को जोड़ लेते हैं। जोड़ने का हमें उपाय नहीं करना पड़ता, जुड़ ही जाता है। वह बिल्कुल हमारी आदत का हिस्सा हैं। ऐसे कर्म में भी हम कर्ता बन जाते हैं जिसमें हमारा कर्म है ही नहीं। आदमी कहता है, मै श्वास ले रहां हूं। श्वास में.. कोई श्वास लेता नहीं दुनिया में नहीं तो मरना मुश्किल हो जाए। मौत खड़ी है और आप श्वास लिए चले जा रहे हैं! मौत कह रही है कि अब बंद भी करिए और आप कहते हैं हम बंद नहीं करेंगे, तो मौत क्या करे? श्वास आप लेते नहीं हैं, श्वास चलती है। लेकिन उसके भी भी हम कर्मा बन जाते हैं। हम कहते है। मैं श्वास ले रहा हूं। मै श्वास छोड़ रहा हूं। हमारी भाषा हर चीज को कर्म बना देती है।

वह तो आपको पता नहीं कि आपका खून चल रहा है, नहीं तो आप कहें कि मैं खून चला रहा हूं। आपको पता नहीं है। तीन सौ साल पहले तक किसी को पता नहीं था। कि खून चलता भी है। जब यह पहली दफा जिस आदमी ने कहा कि खून चलता है, उसको क्षमा मांगनी पड़ी अदालत में जाकर। वे कहें, कया फिजूल की बात कर रहे हो! खून कैसे चलेगा! खून भरा हुआ है। और चलने का हमें कभी खुद भी तो चलता नहीं। तीन सौ साल पहले तक दुनिया में किसी को पता नहीं था कि आदमी के भीतर खून चलता है। लेकिन चलता ता है और आप तो चलाने वाले हैं ही नहीं, आपको पता ही नहीं है चलाने का। वैसे ही श्वास भी चलती है, आप चलाने वाले नहीं हैं। जब तक चलती है, जब नहीं चलती है तो नहीं चलती है। फिर एक श्वास भी कम-ज्यादा लेना संभव नहीं है।

लेकिन हम श्वास के कर्ता बन जाते हैं और कहते हैं। मैं श्वास ले रहा हूं, मैं श्वास छोड़ रहा हूं। मैं कुछ कर रहा हूं। अगर बहुत गहरे में प्रवेश करें तो सारा जीवन श्वास की तरह ही चल रहा है। उसमें आप कर्ता नहीं हैं। जब बिल्कुल मौलिक चीज के आप कर्ता नहीं हैं, श्वास, जिसके बिना जीवन क्षणभर न चलेगा, तो बाकी सबका आप क्या सोच रहे हैं! भूख आप लगाते हैं? लग रही है। प्रेम में आप पड़ते हैं? पड़ जाते हैं। घृणा आप करते हैं? हो जाती है। क्रोध आप करते हैं? आ जाता है। अगर जीवन की सारी क्रियाओं में ठीक से प्रवेश करें, तो आपको पता चलेगा कर्ता एक भ्रांति है। शायद एकमात्र भ्रांति है। अकेली भ्रांति है, बस वही भ्रांती है। बाकी सब भ्रांतीयां

उसी के फूल-पत्ते हैं। उस कर्ता को की हम अहंकार कहते हैं, इगो कहतें हैं। वह हमारी भ्रांति है। फिर उस भ्रांति पर हमारा जो भी महल खड़ा होता है, वह सब झूठा है। उसका कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन जब झूठा आधार ही हमने स्वीकार कर लिया हो, तो फिर झूठे महल को बनाने में हमें कोई अड़चन नहीं होती। यश् का, प्रतिष्ठा का यह जो संसार है, सफलता का, दंभ का यह जो फैलाव है, यह फिर उसी झूठे कर्ता पर खड़ा होता चला जाता है।

लेकिन जीवन की प्रक्रिया का ठीक-ठीक बोध हो, तो पता चलेगा कर्ता हम हैं नहीं। फिर हम क्या हैं अगर कर्ता नहीं हैं? अगर यह कर्ता का भाव छूट जाए तो फिर हम क्या हैं? तब हमें पता चलेगा कि हम साक्षी हैं।

-कैवल्य उपनिषद-13

19 श्वास के साक्षी बनो, अंतर्ध्वनि सुनो

संत गुलाल के वचन 'करु मन सहज नाम ब्यौपार' को समझाते हुए ओशो कहते हैं-

परमात्मा की साधना सहज ही हो सकती है। परमात्मा यानी स्वभाव परमात्मा यानी इस अस्तित्व की सहजता। तुम जितने सहज हो जाओ, जितने सरल हो जाओ, उतने ही उसके निकट हो जाओगे। जितने निर्दोष हो जाओ, जितने बच्चे जैसे भोले-भाले हो जाओ, उसके निकट हो जाओगे। संतत्व की पराकाष्ठा वही है; जब तुम परिपूर्ण सहज हो जाते हो।

सहज शब्द का अर्थ होता है : जो अपने से जन्मता है। सहज। ज का अर्थ होता है : जन्मना। जो अपने से जन्मता है। तुम्हारे भीतर कुछ चीजें हैं जो अपने से चल रही हैं। जैसे श्वास। तुम चला नहीं रहे, अपने से चल रही है। तुम सोए रहते हो तब भी चलती रहती है। तुम काम में लगे रहते हो तब भी चलती रहती है- कोई याद थोड़े ही रखनी पड़ती है। अगर याद रखनी पड़े, तो जिंदा रहना मुश्किल है। जरा भूले, जरा किसी काम में ज्यादा उलझ गए, सांस लेना भूल गए, खात्मा हो गया। रात सो गए, खात्मा हो गया। बेहोश भी तुम पड़े रहो तो भी श्वास चलती रहती है। श्वास तुम्हारे भीतर सहजता की प्रतीक है।

बुद्ध ने तो श्वास को ही समस्त योग का आधार माना और विपस्सना एकमात्र ध्यान की विधि दी, कि अपनी श्वास के साक्षी हो जाओ, बस काफी है। सिर्फ श्वास भीतर आई, बाहर गई, इसको देखते रहो- कुछ मत करो- जब सुविधा हो तब श्वास का भीतर आना और बाहर जाना देखते रहो। श्वास जब भीतर आती है, तब होश रखो कि भीतर आ रही है। आते-आते भीतर एक गहराई पर आकर श्वास क्षण भर को ठहर जाती है- बस, क्षण भर को- उसी जगह से द्वार है अंतरात्मा में; जहां श्वास ठहरती है, ठिठकती है। फिर श्वास बाहर की तरफ जाती है। फिर श्वास के साथ बाहर जाओ। फिर बाहर जाकर भी एक जगह है जहां जाकर श्वास क्षण भर को ठिठक जाती हे, वहां भी द्वार है, वहां द्वार है परमात्मा का।

अगर बाहर के द्वार से प्रवेश करोगे, तो परमात्मा के द्वारा अपने में प्रवेश हो जाएगा। और अगर भीतर से प्रवेश करोगे, तो अपने द्वारा परमात्मा में प्रवेश हो जाएगा। दोनों द्वारों में से कोई भी एक चुन लो। ज्ञानी भीतर का द्वार चुनता है, भक्त बाहर का द्वार चुनता है। मगर वे दोनों द्वार एक ही परमात्मा के द्वार हैं।

श्वास सहजतम प्रक्रिया है... और ध्यान रखना, प्राणायाम के लिए नहीं कह रहा हूं। कि गहरी श्वास लो, कि एक नाक बंद करके और एक नाक से श्वास लो, फिर इतने समय तक श्वास को भीतर रोको, फिर इतने समय तक बाहर रोको- वह तो असहज हो गया, वह तो कृत्रिम हो गया। नहीं, श्वास जैसे चल रही है अपने-आप, प्राकृतिक, बस उसको देखते रहो। बुद्धों की यह प्रक्रिया अनूठी है।

गुलाल इसी को सहज नाम कहते हैं। इसको नाम क्यों कहते हैं? क्योंकि अगर तुम इस श्वास को सुनते रहे, देखते रहे, भीतर आना, बाहर जाना, भीतर आना, बाहर जाना और धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर का द्वार तुम्हें अनुभव में आ जाए या बाहर का द्वार अनुभव में आ जाए, तो तुम चकित हो जाओगे : तुम मंदिर के द्वार पर ही बैठे थे। कहीं जाना न था। काबा तुम्हारे भीतर था, काशी तुम्हारे भीतर थी, गिरनार तुम्हारे भीतर था, तुम कहां भागे फिरते थे? और जैसे-जैसे श्वास के साथ तुम्हारा तालमेल बैठेगा, तारतम्य बैठेगा, वैसे-वैसे तुम्हें एक नाद सुनायी पड़ेगा, जिसको संतों ने अनाहत कहा है, अनहद कहा है, उस नाद का नाम ही'नाम' है। वह नाद अगर हम भाषा में उतारने की कोशिश करें, तो करीब-करीब ओंकार जैसा है। करीब-करीब। ठीक ओंकार ही नहीं। ओंकार उसकी निकटतम ध्वनि है। ओम् उसकी निकटतम ध्वनि है इसलिए ओम् को सारे धर्मो ने स्वीकार किया है।

भारत में तीन धर्म पैदा हुएः जैन, बौद्ध, हिंदू। उनका सब मामलों में विरोध है, किसी चीज में उनका मतैक्य नहीं है, लेकिन ओम् के संबंध में वे तीनों सहमत हैं। और यहूदी, ईसाई और मुसलमान, तीन धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। वे तीन भी ओम् के संबंध में सहमत हैं। हालांकि उन्होंने ओम् को अलग-अलग नाम दिए हैं। थोड़े-से भेद। वे भेद स्वाभाविक हैं। क्योंकि ओम् कोई शब्द नहीं है, ध्वनि है। और ध्वनि का तुम कैसा रूपांतर करोगे भाषा में, यह तुम पर निर्भर है। मुसलमान कहते : अमीन। वह ओम् का ही रूप है। ईसाई और यहूदी कहते : आमेन। वह ओम् का ही रूप है। यह भीतर जब श्वास पर तुम्हारा साक्षीभाव टिक जाता है, तब तुम्हें यह ध्वनि सुनाई पड़नी शुरू होती है। तुम्हें कहना नहीं है ओम्, ओम्- तुम कहोगे तो औपचारिक हो गया- यह तुम्हें सुनायी पड़े। तुम तो केवल श्रोता और द्रष्टा रहोगे। यह तुम्हारे भीतर अपने से उपजता हुआ दिखायी पड़े, सहज हो तो ही समझना कि सार्थक है।

-झरत दसहुं दिस मोती-5

20 श्वास लयबद्ध, आनंदपूर्ण हो

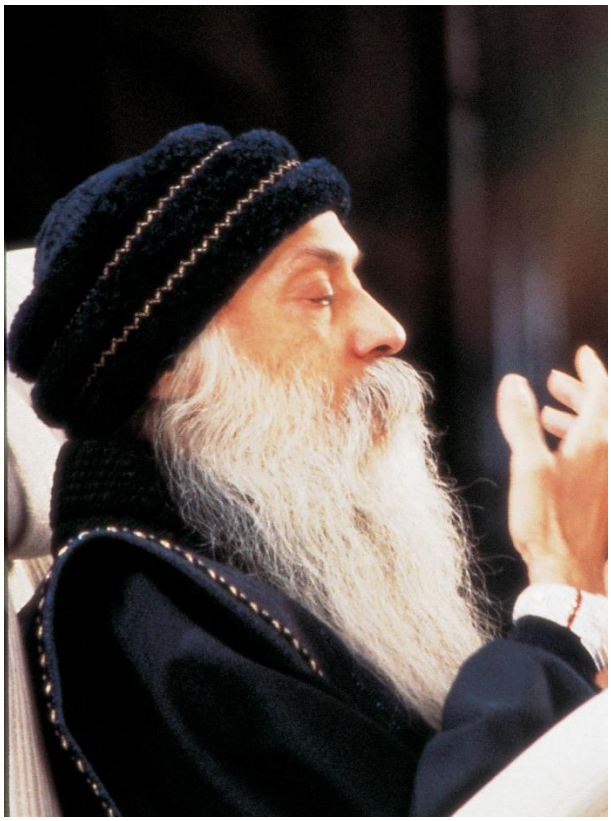

अगर किसी भी चीज पर कोई एकाग्रता करे, तो थोड़ी देर में मूर्च्छित हो जाएगा। उस मूर्च्छा में भी एक तरह का सुख मिलता है, जैसे शराब पीने में, और किसी भी भांति की मूर्च्छा में मिलता है। जब आप मूर्च्छा के बाद होश में आएंगे, तो आपको ऐसा लगेगा, बहुत सुख था।

सुख बिल्कुल नहीं था, केवल दुख का अभाव था। केवल चिंताएं, पीड़ाएं और परेशानियां मौजूद नहीं थीं, क्योंकि आप मूर्च्छित थे। आखिर सारी दुनिया में शराब के पीछे इतना आकर्षण क्यों है? एक ही बात है : शराब आपकी चिंताओं को, आपकी परेशानियों को मिटा देती है, क्योंकि आप मूर्च्छित होते हैं, आप होश में नहीं होते हैं। वे मिटती नहीं हैं, केवल आपकी आंखों से ओझल हो जाती हैं, क्योंकि आप मूर्च्छित हो जाते हैं।

इस तरह के ध्यान को असम्यक ध्यान मैं कहता हूं। यह ध्यान वास्तविक नहीं है। यह ध्यान का धोखा है। अगर आप मूर्च्छित हो जाएं, तो आप सम्मोहन में चले गए, हिप्नोसिस में चले गए, आप ध्यान में नहीं गए। ध्यान का अर्थ है : परिपूर्ण जाग्रत हो जाना। ध्यान

का अर्थ है : पूरे होश से भर जाना। ध्यान का अर्थ है : पूरे अप्रमाद की स्थिति में हो जाना, पूरी अवेयरनेस में। उसका अर्थ मूर्च्छा नहीं है। उसका अर्थ बेहोशी नहीं है। वह तब संभव होगा, जब आप एकाग्रता न करें।

तो फिर आप क्या करेंगे? अगर एकाग्रता हम नहीं करेंगे तो हम क्या करेंगे?

हम चंचलता को जानते हैं, हम एकाग्रता को भी जानते हैं। हम मंदिरों में, मस्जिदों में बैठ कर एकाग्रता करने की कोशिश भी करते हैं।

हम एक तीसरा प्रयोग करने को हैं, जिसमें हम न चंचलता करेंगे, न एकाग्रता करेंगे। हम कोई एक नई बात करना चाहते हैं। और वह यह, कि बैठ जाएं किसी एकांत में, सारे शरीर को ढीला छोड़ दें और फिर आसपास जो आवाजें सुनाई पड़ती हैं, उन सबको चुपचाप सुनते रहें।

शरीर को, रीढ़ को सीधा और शरीर को ऐसे ढीला छोड़ देना है, जैसे खूंटी पर हमने कोट लटका दिया हो। रीढ़ की खूंटी पर सारा शरीर बिल्कुल ढीला छूटा हुआ है। रीढ़ सीधी है और शरीर बिल्कुल ढीला है। जैसे शरीर में कोई प्राण नहीं, ऐसा ढीला छोड़ दिया है। जितना ढीला आप शरीर को छोड़ देंगे, उतनी शीघ्रता से भीतर गति होगी। जितना शरीर ढीला छूट जाता है, उतना ही शरीर का स्मरण क्षीण होने लगता है। और आपका भीतर प्रवेश संभव हो जाता है।

तो शरीर को ढीला छोड़ेंगे और फिर गहरी श्वास लेंगे। गहरी श्वास में झटके से नहीं लेना है कि तकलीफ मालूम हो। इतने जोर से नहीं लेना है कि आपको कोई परेशानी मालूम हो। इतने जोर से नहीं लेना है कि दस मिनट में आप थक जाएं। इतने आहिस्ते लेना है, इतने रिदमिक लेना है कि कोई तकलीफ न हो, कोई पीड़ा न हो। श्वास धीमे से जाए, श्वास लेना एक आनंद हो, काम न हो। उस श्वास को बड़े आनंद से, बड़ी शांति से, गहरा लेकर धीरे-धीरे गहरा छोड़ना है। उसे न तो भीतर रोकना है, न बाहर रोकना है। रोकना कहीं भी नहीं है, केवल गहरे लेना और गहरे छोड़ देना है। लेते वक्त पेट जहां ऊपर उठे, आंख बंद रखनी है और उस जगह ध्यान को जगाए रखना है कि पेट अब ऊपर उठा, अब नीचे गिरा। उसी बिंदु को चुपचाप देखते रहना है। उसको देखते-देखते मस्तिष्क के सारे तंतु शांत हो जाएंगे, सारे विचार शांत हो जाएंगे, थोड़ी देर में केवल श्वास का स्पंदन मात्र रह जाएगा। फिर तीन दिन हम प्रयोग करेंगे, उसमें गहराई रोज-रोज बढ़ती चली जाएगी।

स्मरणीय यह भी है कि हम सब इस तरह बैठेंगे कि कोई किसी को छुएगा नहीं। वस्त्र जो पेट को कसे हों उन्हें थोड़ा ढीला कर लेंगे, ताकि वे आपके पेट पर बाधा न बनें। और अगर यहां अंदर थोड़ी कम जगह मालूम पड़ती हो, तो दोनों तरफ बरांडों में चले जाएंगे। आवाज मेरी वहां पहुंचेगी, बल्कि और सुखद होगा, वहां खुली हवा होगी और आप ज्यादा एकांत में बैठ सकेंगे। और इस भांति बैठें कि कोई किसी को छूता नहीं है, कोई का किसी को धक्का न लगे, इस भांति फैल जाएं। और अगर थोड़ी जगह कम है तो बाहर आ जाएं। जगह की अड़चन की वजह से भीतर न बैठें। ये बगल के जो बरांडे हैं, बहुत साफ हैं, इनमें आप आ जाएंगे तो बड़ा लाभ होगा।

रीढ़ सीधी कर लें। सीधी का मतलब खींची हुई नहीं है। आराम से सीधा कर लें, वह कहीं झुकी हुई न हो। अच्छा हो दीवाल से न टिके कोई, अन्यथा आप अपनी रीढ़ सीधी नहीं कर पाएंगे। रीढ़ सीधी रखें, रीढ़ के ही सहारे हों। और आंख बंद कर लें। आहिस्ते से पलकों को झप जाने दें, धीमे से पलक गिर जाने दें, आंख बंद कर लें। अब धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। बहुत आहिस्ता से, बहुत शांति से, बहुत आनंद से गहरी श्वास लें। श्वास पेट तक जाती हुई मालूम हो। पेट ऊपर उठेगा, नीचे गिरेगा। श्वास को धीरे-धीरे वापस हो जाने दें। बहुत धीमी और गहरी श्वास लें। बहुत आहिस्ता से, आराम से। श्वास पेट तक जाए, पेट ऊपर उठे, फिर धीरे से वापस हो जाए। आपके पेट का स्पंदन देख लें--कहां हो रहा है। जहां पेट ऊपर गिर रहा है, उठ रहा है, जहां पेट कंप रहा है--आंख बंद किए हुए उसी जगह पर अपने ध्यान को ले जाएं। वहीं जाग जाएं, उस जगह को देखें, उस जगह को स्मरणपूर्वक देखें। उस जगह को स्मरणपूर्वक देखें जहां श्वास जाकर पेट को उठा रही है। उस जगह को स्मरणपूर्वक देखें। उस जगह को देखते रहें। शांति से वहीं जाग जाएं। अपने जागरण को, अपनी

स्मृति को, अपने ध्यान को वहीं जगा लें। वहीं देखें। नाभि दिखाई पड़ेगी, उसका कंपन दिखेगा। वही दिखता रह जाए, केवल वही रह जाए। ठीक है, गहरी श्वास, नाभि के पास ध्यान।

मस्तिष्क को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, उससे कोई काम नहीं लेना है। मस्तिष्क से कोई काम नहीं लेना है, उसे बिल्कुल ढीला छोड़ दें। मस्तिष्क से कोई भी काम नहीं लेना है, मस्तिष्क के सारे स्नायु ढीले छोड़ दें। केवल श्वास लें। जैसे हम केवल श्वास ही ले रहे हैं। केवल श्वास लें और नाभि को देखें।

बिल्कुल ठीक है। नाभि को देखते चले जाएं, नाभि को देखते चले जाएं..। सब शांत होता जा रहा है, सब शांत होता जा रहा है, सब शांत होता जा रहा है..। जल्दी न करें।

-समाधि कमल-1

21 श्वास-श्वास आनंद से ओतप्रोत हो

ध्यान के अंतिम चरण में सदगुरु ओशो द्वारा दिए सुझाव-

आनंद ही आनंद शेष रह गया है.. आनंद को अनुभव करें, अनुभव करें, रोएं-रोएं तक आनंद की तरंगों को फैलने दें.. हृदय के भीतर हृदय की धड़कन-धड़कन को आनंद से भर जाने दें.. श्वास-श्वास आनंद से भर जाने दें.. आनंद..

नाउ फील दि ब्लिस, नाउ बी फिल्ड विद ब्लिस, नाउ बी वन विद दि ब्लिस.. एक हो जाएं, एक हो जाएं, एक हो जाएं..

जो लोग आनंद को अनुभव न कर पा रहे हों, वे अपने दाएं हाथ को हृदय पर रख लें और आहिस्ता से दबाएं। पुट योर राइट हैंड पाम ऑन योर हार्ट एंड प्रेस दि स्पॉट। दोज हू आर नॉट फीलिंग ब्लिस, दे शुड पुट देयर राइट हैंड पाम ऑन दि हार्ट, एंड देन प्रेस दि स्पॉट, प्रेस दि स्पॉट..

दबाते ही भीतर आनंद की तरंगें फैलनी शुरू हो जाएंगी। जैसे कोई पत्थर फेंक दे झील में और लहरें उठ जाएं, ऐसा ही हृदय को दबाते ही तरंगें फैलनी शुरू हो जाएंगी.. जस्ट बाइ प्रेसिंग योर हार्ट, वेव्स ऑफ ब्लिस आर कमिंग.. एंड दे गो ऑन स्प्रेडिंग, दे गो ऑन स्प्रेडिंग..

आनंद अनुभव करें, आनंदित हों, आनंद अनुभव करें, आनंद में डूब जाएं, एक हो जाएं.. आनंद अनुभव करें, आनंद अनुभव करें, आनंदित हों, आनंद अनुभव करें, आनंदित हों.. रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में आनंद को भर जाने दें..

आनंद.. आनंद.. आनंद.. फील ब्लिस.. मोर ब्लिस.. मोर ब्लिस.. एंड बिकम वन विद इट.. एक हो जाएं, एक हो जाएं, एक हो जाएं इस आनंद के साथ..

और आनंद के पीछे-पीछे ही परमात्मा की मौजूदगी अनुभव होने लगती है.. और आनंद की सघनता ही परमात्मा की मौजूदगी बन जाती है.. आनंद को अनुभव करें, और पीछे-पीछे परमात्मा का स्पर्श आने लगता है.. ड़ीपर वन इज इन ब्लिस, डीपर वन गोज इनटु दि डिवाइन.. परमात्मा को अनुभव करें, चारों ओर वही घेरे खड़ा है, चारों ओर उसी का स्पर्श है, बाहर-भीतर वही स्पर्श कर रहा है..

नाउ डिजाल्व योरसेल्फ कंप्लीटली एंड फील दि प्रेजेंस ऑफ दि डिवाइन.. आती श्वास में वही है, जाती श्वास में वही है.. अनुभव करें, परमात्मा के स्पर्श को अनुभव करें और उसका स्पर्श तन-प्राणों को नृत्य से भर देगा और एक नई सुवास से.. स्पर्श अनुभव करें और भीतर अनुभूति उतरनी शुरू हो जाएगी.. उसकी मौजूदगी अनुभव करें और भीतर हृदय नाचने लगेगा.. उसकी मौजूदगी अनुभव करें और भीतर सुगंधित हो उठेगा.. अनुभव करें, उसकी मौजूदगी अनुभव करें, और आप एक मंदिर बन जाते हैं.. उसकी मौजूदगी अनुभव करें.. फील दि डिवाइन आल अराउंड एंड यू बिकम दि डिवाइन्स टेंपल.. अनुभव करें..

जिन लोगों को मौजूदगी अनुभव न होती हो, वे एक सेकेंड के लिए श्वास को रोक दें जहां है वहीं। दोज हू आर नॉट एबल टु फील दि डिवाइन, दे शुड स्टॉप देयर ब्रेथ एज इट इज, स्टॉप फॉर ए मोमेंट। एंड दि मोमेंट ब्रेथ इज स्टॉप्ड, दि प्रेजेंस इज फेल्ट।

एक सेकेंड को श्वास को रोकें वहीं जहां है, श्वास के रुकते ही उसकी मौजूदगी अनुभव होगी.. परमात्मा चारों ओर मौजूद है.. अनुभव करें, अनुभव करें.. वही मौजूद है, चारों ओर वही मौजूद है.. परमात्मा मौजूद है, वही मौजूद है, वही मौजूद है.. अब आप मिट गए, वही है..

और ध्यान की अंतिम स्थिति अनुभव करें। अब उसकी मौजूदगी ही नहीं, आप स्वयं परमात्मा हैं। मैं स्वयं परमात्मा हूं। अनुभव करें : अहं ब्रह्मास्मि! उसकी मौजूदगी ही नहीं, अब मैं तो मिट गया, अब वही है.. मैं स्वयं परमात्मा हूं.. अनुभव करें.. मैं स्वयं परमात्मा हूं.. नाउ नॉट ओनली दि प्रेजेंस ऑफ दि डिवाइन, नाउ फील दैट यू आर दि डिवाइन.. व्हेन यू आर नॉट, यू आर दि डिवाइन.. नाउ फील, नाउ रिमेंबर, नाउ रियलाइज.. आई एम दि डिवाइन.. मैं ही प्रभु हूं, मैं ही प्रभु हूं.. अनुभव करें, आनंद को अनुभव करें, आनंद को अनुभव करें, आनंद को.. मैं ही प्रभु हूं..!

-ध्यान के कमल-9

22 श्वास-श्वास में भगवान का भोग

जिन्होंने परमात्मा को जाना उन्होंने ही भोगा। भोग भक्त और भगवान के बीच का संबंध है। भोग की गंगा बहती है भगवान औरभक्त के किनारों के बीच.. एक तरफ भगवान, दूसरी तरफ भक्त, बीच में भोग की गंगा का प्रवाह।

भोग बड़ा बहुमूल्य शब्द है.. योग से ज्यादा बहुमूल्य। लेकिन मेरे अर्थ को ठीक से समझ लेना। योग तो फिर भी मनुष्य की बुद्धि का जा.ेड है, हिसाब-किताब है, विधि-विधान है। भोग बुद्धि का नहीं, हृदय का परमात्मा से जोड़ है; न कोई हिसाब है, न कोई किताब है, न कोई विधि-विधान है। समग्र समर्पण है; समग्र निवेदन है।

भक्त अपने को भगवान के चरणों में रख देता है; उसी क्षण से श्वास-श्वास में भगवान का भोग शुरू हे जाता है।

भोग के अर्थ को जाना तो जा सकता है, कहा नहीं जा सकता; क्योंकि भोग स्वाद की बात है। जिसने लिया हो, वही जानेगा। और जिसने जाना हो, वह भी कह न सकेगा; क्योंकि स्वाद की बात है, गूंगे का गुड़ है। और सारे स्वाद तो इंद्रियों के हैं। आंख से रूप का स्वाद मिलता है। कान से स्वर का स्वाद मिलता है। हाथ से स्पर्श का स्वाद मिलता है। परमात्मा तुम्हारी समग्रता का स्वाद है। आंख, कान, हाथ, पैर.. तुम पूरे के पूरे एक ही लयबद्धता में, एक ही नृत्य में लीन हो जाते हो। आंखें देखती ही नहीं, सुनती भी हैं। कान सुनते ही नहीं, देखते भी हैं। हाथ छूते ही नहीं, गंध भी लेते हैं। तुम्हारी पूरी समग्रता अस्तित्व के साथ आंदोलित होती है। उस घड़ी का नाम स्वाद है।

जिन्हें तुमने संसार में स्वाद जाना है, वे तो केवल इंद्रियों के आभास हैं, धोखे हैं। जिसने परमात्मा का स्वाद जान लिया, संसार के स्वाद अपने से ही छूट जाते हैं। छोड़ना पड़े तो एक बात पक्की है कि तुमने परमात्मा के स्वाद को नहीं जाना।

इसलिए भक्त त्याग की बात ही नहीं करता। यह कोई सौदा नहीं है कि तुम छोड़ोगे तो परमात्मा को पाओगे। तुम परमात्मा को पा लोगे तो तुम पाओगे, अचानक बहुत कुछ छूटने लगा। जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं, ऐसा ही कुछ व्यर्थ हो जाएगा और गिर जाएगा। स्वाभाविक है कि जब परम स्वाद मिले तो क्षुद्र का स्वाद गिर जाए। जब परम भोग सजा हो तो रूखे-सूखे के लिए कौन राजी होगा! जब उसका मंदिर खुले तो कौन क्षुद्र में अपना आवास बनाएगा! इसलिए भक्त के लिए भोग तो बड़ा अनूठा शब्द है।

भक्त अपने को समर्पित करता है। वह कहता है, तुम्हीं सम्हालो! अपने को सम्हालता हूं तो अहंकार निर्मित होता है। अहंकार ही दूरी खड़ी करता है। जितना मैं होता जाता हूं उतना दूर होता चला जाता हूं। तो भक्त कहता है, तुम्हीं सम्हालो! मैं अपने को बीच में खड़ा न करूंगा। न तो करूंगा जप, न करूंगा तप, न त्याग, न तपश्चर्या.. क्योंकि उस सबसे अंहकार निर्मित होता है। उस सबसे लगाता है : मैं कुछ हूं!

करने से स्वभावतः 'मैं' निर्मित होता है। इसलिए भक्ति कोई कृत्य नहीं है। भक्ति शुद्ध समर्पण है।

भक्त कहता है, मैं सम्हाल नहीं सकता अपने को, छोड़ता हूं तुम्हारे चरणों में! तुम्हीं जहां ले जाओ, चलूंगा; तुम्हीं जो कराओ, करूंगा; तुम्हीं श्वास लो, तो श्वास लूंगा, तुम्हीं रुक जाओ तो रुक जाऊंगा। ऐसा समग्र न्योछावर, सर्वस्व दान.. तत्क्षण भोग की घड़ी आ जाती है.. इधर तुमने अपने को छोड़ा उधर परमात्मा तुम्हें मिलना शुरू हुआ।

भगवान, भक्ति और भोग, तीनों बड़े जुड़े हुए शब्द हैं। योग तो कहता है, हम टूट गए हैं, जोड़ना पड़ेगा। योग का अर्थ होता है : जोड़। योग शब्द का ही अर्थ होता है : जोड़। योग कहता है : हम टूट गए हैं परमात्मा से, जोड़ना पड़ेगा। भोग का अर्थ होता है : हम जुड़े ही हैं, भोगना शुरू करो। देर कैसी? व्यर्थ प्रतीक्षा किसकी कर रहे हो? हम जड़े ही हैं, जोड़ना नहीं है। अगर टूट गए होते तो जोड़ने का फिर कोई उपाय न था। टूटे नहीं हैं, इसलिए जुड़ सकते हैं। जोड़ने की चर्चा की मत उठाओ। जुड़े हैं।

तुम हो कैसे सकते हो बिना परमात्मा से जुड़े हुए? एक क्षण को भी न हो सकोगे, एक पल को भी न हो सकोगे। वही श्वास लेगा तो श्वास चलेगी। वही सूरज बन कर चमकेगा तो शरीर को उत्ताप मिलेगा। वही हवाओं में आएगा तो प्राण मिलेगा। वही वर्षा में आएगा तो प्यास बुझेगी। वही भोजन में आएगा तो शक्ति मिलेगी। वही हजार-हजार रूपों में आएगा तो ही तुम जी सकोगे। एक क्षण को भी उससे टूटे कि जीना समाप्त हुआ। उससे जुड़े होने का नाम ही तो जीवन है।

इसलिए भक्त कहता है : टूटना तो हुआ ही नहीं, जोड़ने की बात ही गलत है। भक्त कहता है : जुड़े हैं, अब बस भोगना है। भक्त कहता है : तुम जुड़े हो और भोग नहीं रहे.. कैसे पागल हो! किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हो? उत्सव की पूरी तैयारी हो चुकी है। सब पूरा-पूरा तैयार है, तुम बैठे कैसे हो उदास? तुम राह किसकी देखते हो? जिसकी तुम राह देखते थे वह आ ही चुका है। वह तुम्हारे भीतर ही निनादित है। तुम किसे पुकार रहे हो? जिसने पुकारा है, वही तो तुम्हारी पुकार है। तुम किसे खोजने चले हो? जो खोजने निकला है, उसमें ही तो छिपा है।

भक्त कहता है : भोगो! एक पल भी खोने जैसा नहीं है : तैयारी करनी होती तो समय लगता। इसलिए भक्ति की दृष्टि बड़ी अनूठी है। योग की दृष्टि में तो समय समाविष्ट है; कुछ करोगे, कल कुछ होगा, फल मिलेगा, बीज बोओगे, फसल उगेगी, काटोगे.. हजार उपद्रव हैं.. वर्षा होगी, न होगी; संयोग मिलेंगे, बनेंगे, न बनेंगे! लेकिन भक्त कहता है, कल की तो बात ही नहीं। जिसे तुम भोगना चाहते हो वह इसी क्षण तुम्हारे हाथ में है।

ऐसा देखते ही, ऐसी सुध आते ही.. इसको ही सुरति, इसको ही स्मृति, इसको ही बोध.. ऐसी सुरति आते ही भक्त नाचने लगता है। इसलिए भक्त नाचे। योगियों ने साधा.. भक्त नाचे। योगियों ने बड़े विधि-विधान बनाए.. भक्तों ने भोगा। योगियों ने आसन, प्राणायाम, व्यायाम किए.. भक्तों ने उठा ली वीणा।

उत्सव तैयार ही है। समारम्भ रचा ही हुआ है। यहां देर है ही नहीं। यहां क्षणभर भी खोना अपने ही कारण खोना है, उसके कारण नहीं।

भोग की दृष्टि यह है, परम भोग की, भक्त के भोग की दृष्टि यह है कि एक भी तैयारी की जरूरत नहीं है। समय अनिवार्य नहीं है। इसी क्षण आया हुआ है तुम्हारे द्वार पर परमात्मा। इसी क्षण उसने तुम्हें चारों ओर से घेरा है। उसी का स्पर्श तुम्हें हो रहा है हवाओं में। उसी की श्वास तुम्हारे हृदय को गतिमान किए है। वही है तुम्हारा सोच-विचार। वही है तुम्हारा ध्यान। इस बात की प्रतीति, प्रत्यभिज्ञा, बस काफी है।

-भक्ति-सूत्र-12

23 श्वास, शारीरिक सजगता और मंत्र

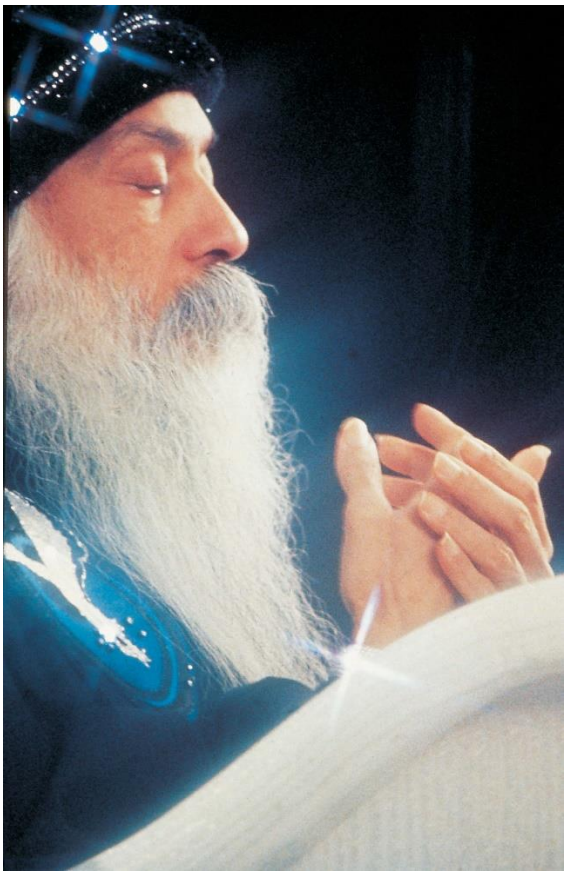

प्रश्नः भगवान, हमें ऐसा अनुभव होता है कि अचेतन की गहरी परतों में प्रवेश करना व उन्हें केवल सजगता के द्वारा रूपांतरित करना कठिन है, और पर्याप्त भी नहीं है; इसलिए सजगता के अलावा और क्या अभ्यास करें? कृपया इसके बारे में इसके प्रायोगिक आयाम को अधिक ध्यान में रखते हुए समझाएं।

अचेतन को रूपांतरित केवल सजगता से ही किया जा सकता है। यह कठिन है, किंतु दूसरा कोई मार्ग नहीं है। सजग होने के लिए कितनी ही विधियां हैं। परंतु सजगता अनिवार्य है। आप विधियां का उपयोग जागरण के लिए कर सकते हैं; किंतु आपको जागना तो पड़ेगा ही। यदि कोई पूछता है कि क्या कोई विधि है अंधकार को मिटाने की सिवा प्रकाश के, तो वह चाहे कितना ही कठिन हो, किंतु वही एकमात्र उपाय है, क्योंकि अंधकार केवल अभाव है, प्रकाश का। इसलिए आपको प्रकाश का उपस्थित करना होगा और तब अंधकार वहां नहीं होगा। ...

...मैं तीन उपायों की बात करूंगा। एक तरफ का उपाय है जो कि शरीर की सजगता पर निर्भर करता है। भूल जाए क्रोध को; भूल जाए काम को। वे मुश्किल समस्याएं हैं। और जब आप उसमें होते हैं, आप इतने पागल हो जाते हैं कि आप ध्यान नहीं कर सकते। जब

आप क्रोध में होते हैं, तो आप ध्यान नहीं कर सकते। आप ध्यान के बारे में सोच भी नहीं सकते। अब आप सिर्फ विक्षिप्त हैं। इसलिए भूलें उसे, वह कठिन है। तब अपने शरीर का उपयोग करें सजगता के लिए एक उपाय की भांति

बुद्ध ने कहा है कि जब आप चलें, तो सजगता से चलें। जब आप श्वास लें, तो होशपूर्वक श्वास लें। बौद्धों की जो पद्धति है वह है- अनापानासती योग- बाहर आती और भीतर जाती श्वास का योग, बाहर आती, भीतर जाती श्वास के प्रति सजगता। श्वास भीतर आती है, तो श्वास के साथ भीतर चले जाए। जानें, होश रखें, कि श्वास भीतर आ रही है। जब श्वास बाहर जा रही है, तो उसके साथ बाहर चले आए। भीतर आए, बाहर आए श्वास के साथ।

क्रोध मुश्किल है, काम भी मुश्किल है, श्वास इतनी कठिन नहीं है। श्वास के साथ-साथ चलें। एक भी श्वास बिना होश रखे भीतर या बाहर नहीं आने या जाने दें। यही ध्यान है। अब आप का ध्यान श्वास केंद्रित होगा, और जब आपका ध्यान श्वास पर केंद्रित होगा, तो विचार अपने आप रुक जाएंगे। अब आप विचार नहीं कर सकते, क्योंकि जैसे ही आप विचार करते हैं आपकी चेतना श्वास पर से विचार पर चली जाती है। आप श्वास को चूक जाएंगे।

इसका प्रयत्न करें, और आपको मालूम पड़ जाएगा। जब आप श्वास के प्रति सजग हैं, तो विचार रुक जाएंगे। वही ऊर्जा जो कि विचार के उपयोग में आ रही थी, अब श्वास के प्रति जागने के काम आ रही है। यदि आप विचार करना शुरू करें, तो आप श्वास की राह चूक जाएंगे। आप भूल जाएंगे, और आप सोचने लग जाएंगे। आप दोनों काम एक साथ नहीं कर सकते।

यदि आप श्वास का अनुगमन कर रहे हैं, तो यह एक लंबी प्रक्रिया है। किसी को भी इसमें बहुत गहरे जाना पड़ेगा। इसमें किसी को कम से कम तीन महीने लगेंगे, और ज्यादा से ज्यादा तीन वर्ष, यदि इसे कोई चौबीस घंटे करे। यह पद्धति भिक्षुओं के लिए है- उसके लिए जिन्होंने कि सब कुछ छोड़ दिया है। केवल वही चौबीस घंटे अपनी श्वास पर ध्यान कर सकते हैं। इसीलिए बौद्ध भिक्षु और भिक्षुओं की दूसरी परंपराओं ने अपने निर्वाह को कम से कम पर आधारित कर लिया, ताकि कोई प्रकार की अड़चन न आए। वे भोजन के लिए भिक्षा मांग लेते हैं और पेड़ के नीचे सो जाते हैं, बस, इतना काफी है। उसका सारा समय सजगता के आंतरिक अभ्यास के लिए हैं, जैसे कि श्वास पर ध्यान।

एक बौद्ध भिक्षु घूमता है। उसे अपनी श्वास के प्रति सतत ध्यान रखना पड़ता है। बौद्ध भिक्षुओं के चेहरे पर जो शांति आप देखते हैं, वह कुछ और नहीं बल्कि श्वास पर ध्यान करने की शांति है। यदि आप भी सजग हो जाएं, तो आपका चेहरा भी शांति प्रकट करेगा, क्योंकि यदि विचार नहीं है, तो आपको चेहरा चिंता, विचार नहीं प्रकट कर सकता। आपका चेहरा विश्राम को उपलब्ध हो जाता है। सतत श्वास के प्रति सजगता मन को बिल्कुल ही रोक देगी। वह जो लगातार चिंता में पड़ा मन था, वह रुक जाएगा। और जब मन जाता है और सांप सिर्फ श्वास के प्रति सजग हैं, यदि मन काम नहीं कर रहा है, तो आप क्रोधित नहीं हो सकते, आप कामवासना में नहीं पड़ सकते।

काम या क्रोध या लोभ या ईर्ष्या या जलन कोई भी चीज हो, उसे मन की यांत्रिकता की आवश्यकता होती है। और यदि यांत्रिकता रुक जाती है, तो आप कुछ भी नहीं कर सकते। यह फिर उसी बात पर ले जाते है। अब जो ऊर्जा काम में, क्रोध में, या लोभ में, महत्वाकांक्षा में काम में आती है, उसे कोई रास्ता नहीं मिलता। और आप लगातार श्वास पर ध्यान कर रहे हैं, रात और दिन। बुद्ध ने कहा है- नींद में भी, श्वास के प्रति सजग रहने की कोशिश करो। यह शुरू में कठिन होगा, परंतु यदि आप दिन में होश रख सकें, तो धीरे-धीरे यह आपकी नींद में भी प्रवेश कर जाएगा।

कोई भी चीज नींद में भी प्रवेश कर जाती है, यदि वह दिन के समय आपके मन में गहरे चली गई हो। यदि दिन में आप किसी चीज के प्रति चिंतित रहे हैं, तो यह आपको नींद में भी प्रवेश कर जाती है। यदि आप लगातार सेक्स के बारे में सोचते रहते हैं, तो वह आपकी नींद में प्रवेश कर जाता है। यदि आप सारे दिन क्रोध में रहते हैं, तो क्रोध आपकी नींद में प्रवेश कर जाता है। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि कोई कठिनाई नहीं है। यदि कोई आदमी लगातार श्वास पर ध्यान करता रहे, और श्वास के प्रति सजग रहे, तो अतः वह भी नींद में

प्रवेश कर जाता है। आप तब स्वप्न नहीं देख सकते। यदि भीतर आती और बाहर जाती श्वास के प्रति आपकी सजगता है, तो नींद में आप स्वप्न नहीं देख सकते।

जिस क्षण भी आप सपना देखते हैं, यह सजगता नहीं होती। यदि सजगता है, तो स्वप्न असंभव है। इसलिए एक बौद्ध भिक्षु जो कि सोया हो, वह आपकी तरह नहीं है। उसकी नींद की गुणवत्ता ही भिन्न है, उसकी गहराई अलग ही है। और एक खास सजगता उसमें है।

आनंद ने बुद्ध से कहा- आपको कितने वर्षों से लगातार देख रहा हूं। यह चमत्कार जैसा लगता है। आप ऐसे सोते हैं जैसे कि जाग रहे हों! आप सारी रात्रि उसी करवट सोते रहते हैं। हाथ जहां पर रखा हो वहां से वह नहीं हटेगा। पांव उसी जगह वैसे ही रहेगा। बुद्ध उसी करवट रात भर। एक ही आसान में सोएंगे। जरा भी हिलन-डुलन नहीं। कई रातों आनंद बैठा रहता और देखता रहता और आश्चर्य करता- यह किस प्रकार की नींद है! बुद्ध हिलेंगे भी नहीं। वे ऐसे होंगे, जैसे कि एक मृत शरीर हो और वे उसी करवट उठेंगे जिस करवट कि रात साए थे। आनंद ने पूछा- आप करते क्या हैं? आप सोते भी हैं या नहीं? आप कभी हिलते भी नहीं!

बुद्ध ने कहा- आनंद, एक दिन आएगा, जब तुम जानोगे। इससे इस बात का पता चलता है कि तुम ठीक से अनापान सती योग का अभ्यास नहीं कर रहे हो, यह इतना ही बतलाता है। अन्यथा यह प्रश्न नहीं उठता। तुम अनापान सती योग का अभ्यास नहीं कर रहे हो। यदि तुम दिन में सतत अपनी श्वास के प्रति सजग रहो, तो यह असंभव है कि रात में तुम उसके प्रति सजग रहो। और यदि मन सजगता की और लगा है, तो स्वप्न प्रवेश नहीं कर सकते। जब कोई स्वप्न नहीं है, तो मन साफ होता है- पारदर्शक। तुम्हारा शरीर सोता है, परंतु तुम नहीं। तुम्हारा शरीर विश्राम करता है, तुम सजग रहते हो, भीतर लौ जलती है। इसलिए, आनंद, बुद्ध ने कहा, मैं नहीं सोता हूं, केवल शरीर ही सोता है। मैं तो जागता रहता हूं। और केवल नींद में ही नहीं आनंद, किंतु जब मैं मरूंगा तब भी तुम देखोगे कि मैं जागा हुआ ही रहूंगा। केवल यह शरीर ही मरेगा।

श्वास के प्रति सजगता का अभ्यास करें। तब आप इसे गहरा करने में सक्षम हो सकेंगे सजगता का अभ्यास शरीर की गतिविधियों के साथ करें। बुद्ध ने उसके लिए एक शब्द का उपयोग किया है- वे उसे माइंडफुलनेस कहते है- होश, सजगता। उन्होंने कहा- होशपूर्वक चलो। हम भी चलते हैं, पर बिना कोई होश रखे।

एक दिन जब बुद्ध बोल रहे थे तो एक आदमी उनके सामने बैठा हुआ था। वह अनावश्यक ही अपना पांव व उसका एक अंगूठा हिला रहा था। उसके लिए कोई कारण भी नहीं था। उसके लिए कोई कारण भी नहीं था। बुद्ध ने बोलना बंद कर दिया और उस आदमी से पूछा, तुम अपना पांव और अंगूठा क्यों हिला रहे हो? अचानक जैसे ही बुद्ध ने यह पूछा वह आदमी रुक गया। तब बुद्ध ने पूछा- यह अचानक तुम रुक क्यों गए।

उस आदमी ने कहा, क्यों, मुझे पता भी नहीं था कि मैं अपना पांव अथवा अंगूठा हिला रहा हूं। मुझे कुछ भी पता नहीं। जैसे ही आपने पूछा मैं सजग हो गया। बुद्ध ने कहा- क्या मूर्खता की बात करते हो! तुम्हारा पांव हिल रहा है और तुम्हें पता भी नहीं है? तो फिर तुम अपने शरीर के साथ क्या कर रहे हो? तुम जिंदा आदमी हो या मरे हुए? यह तुम्हारा पांव है; यह तुम्हारा अंगूठा है, जो हिलता ही चला जाता है, और तुम्हें स्वयं इसका कुछ भी पता नहीं। तो फिर तुम्हें पता किस बात का है? तुम किसी की हत्या कर सकते हो और कह सकते हो कि मुझे पता नहीं था। और वस्तुतः जो लोग हत्या करते हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं रहता। वे होश में नहीं होते। होश में रहते हुए किसी की हत्या करना मुश्किल है।

बुद्ध करेंगे- हिलें-डुलें, किंतु होश से भरे रहें। भीतर जानें कि आप चल रहे हैं। आपको कोई शब्द नहीं बोलना है, आपको कोई विचार नहीं करना है। आपको भीतर भी नहीं कहना है- मैं चल रहा हूं, क्योंकि यदि आप बोलते हैं, तो फिर आप चलने के प्रति सजग नहीं हैं। आप अपने विचार के प्रति सजग हो गए और आप चलने को चूक गए। शारीरिक तल पर सजग हो जाएं- न कि मानसिक। केवल महसूस करें कि आप चल रहे हैं। एक शारीरिक सजगता पैदा करें- एक संवेदना ताकि आप सीधे ही अनुभव कर सकें बिना मन को बीच में लाए।

हवा चल रही है, आप अनुभव कर रहे हैं। शब्दों का उपयोग न करें। केवल महसूस करें, और उप प्रतीति के प्रति सजग रहें। आप समुद्र के किनारे पड़े हैं, और रेत ठंडी है- काफी ठंडी। इसे अनुभव करें, शब्द काम में न लें। केवल अनुभव करें- उसकी ठंडक, भीतर प्रवेश करती हुई ठंडक। केवल महसूस करें, उसके प्रति जागे, शब्द काम में न लें। न कहें कि रेत बड़ी ठंडी है। जिसे ही आपने ये शब्द कहे, आप अस्तित्वगत क्षण के चूक गए। आप उसके बारे में बौद्धिक हो गए।

आप अपने प्रेम के साथ हैं अथवा अपनी प्रेमिका के साथ हैं; उपस्थिति को अनुभव करें। शब्दों का उपयोग न करें। केवल ऊष्मा का अनुभव करें, प्रेम बहता हुआ। ऐक्य जो कि घटित हुआ, उसका सिर्फ अनुभव करें। शब्द का उपयोग न करें। न कहें- मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, वरना आप उसे नष्ट कर देंगे। तब फिर मन बीच में आ गया। और जिस क्षण भी आप कहते हैं कि तुम्हें प्रेम करता हूं वह एक अतीत की स्मृति बन जाता है। केवल महसूस करें बिना शब्दों के। कुछ भी जो बिना शब्दों के अनुभव किया जाए, बिना मन को बीच में लाए, वही आपको सजगता प्रदान करेगा।

आप खा रहे हैं, होशपूर्वक खाए। प्रत्येक चीज को होशपूर्वक स्वाद लें। शब्दों का उपयोग न करें। स्वाद खुद ही बड़ी नाजुक और महत्वपूर्ण घटना है; शब्दों को काम में लेकर उसको नष्ट न करें। स्वाद को आखिर तक महसूस करें। आप पानी पी रहे हैं, उसे गले से नीचे जाते हुए महसूस करें। शब्दों का उपयोग न करें। केवल महसूस करें, उसके प्रति सजग रहे। पानी की गति, उसकी ठंडक, खोती हुई प्यास, संतोष का अनुभव जो कि हो रहा हो- उस सब को सिर्फ अनुभव करें।

आप धूप में बैठे हैं, गर्मी का अनुभव करें, शब्दों का उपयोग न करें। सूरज आपको स्पर्श कर रहा है। एक गहन ऐक्य हो रहा है। अनुभव करें उसे। इस तरह से शारीरिक सजगता, सोमेटिव अवेयरनेस बड़ती है। यदि आप शारीरिक सजगता बड़ा लेते हैं तो भी मन रुक जाता है। मन की कोई आवश्यकता भी नहीं रहती। और यदि मन रुक जाता है, तो आप एक गहरे अचेतन में फेंक दिए जाते हैं। एक बहुत गहरी सजगता के साथ आप उसमें प्रवेश कर सकते हैं। अब आपके पास प्रकाश है, और अंधेरा विलीन हो जाता है।

जो लोग शरीर केंद्रित हैं, उनके लिए शारीरिक सजगता अच्छी है। जो लोग शरीर केंद्रित नहीं हैं, उनके लिए अच्छा है कि श्वास के प्रति सजग हों। जिन्हें यह मुश्किल प्रतीत होता हो, वे कोई दूसरा कृत्रिम उपाय खोज सकते हैं। उदाहरण के लिए- मंत्रः यह एक कृत्रिम उपाय है। सजग होने के लिए। आप मंत्र का उपयोग करते हैं, जैसे कि राम-राम-राम लगातार बोलना। भीतर आप एक वर्तुल बना लें राम-राम-राम का या अल्लाह का या किसी भी चीज का। उसे दोहराते जाएं। किंतु खाली दोहराना ही किसी काम का नहीं होगा। साथ ही, सजग भी रहें। जब आप राम-राम-राम का उच्चारण कर रहे हैं, तब इस उच्चारण के प्रति सजग भी रहे। उसको सुनें- राम-राम-राम और सजग रहें।

क्रोध के प्रति सजग होना कठिन होगा, क्योंकि क्रोध अचानक आता है, और आप उसकी कोई योजना नहीं बना सकते और जब वह आता है, आप उसमें इतने ओतप्रोत हो जाते हैं कि आप भूल भी सकते हैं। इसलिए एक उपाय बना लें, जैसे कि राम-राम-राम और आप बना सकते हैं और यह कोई अचानक विधि नहीं है। और इसे इतने लंबे अरसे तक काम में लें कि यह आंतरिक गूंज हो जाए। जो कुछ भी आप कर रहे हैं, करें; किंतु राम-राम चलता रहे, एक मौन कड़ी की तरह। और उसके प्रति सजग रहें।

मंत्र पूरा हो जाता है, जप पूरा हो जाता है, उच्चारण पूरा हो जाता है, जब आप उस आवाज के पैदा करने वाले ही नहीं वरन सुनने वाले भी हो जाते हैं। उपयोग यह होगा कि आप कह रहे हैं- राम, आप उसे सुन भी रहे है। वर्तुल पूरा हो गया। मैं कुछ कहता हूं, आप सुनते हैं, ऊर्जा व्यय हो गई। यदि आप कहें राम और आप ही सुनें भी, तो ऊर्जा वापस लौट कर आ गई। आप बोलने वाले भी हैं और आप सुनने वाले भी। परंतु इसके प्रति सजग रहें। यह कोई मृत रोजमर्रा का कामन हो जाए। अन्यथा आप कहते ही जाएंगे- राम-राम-राम तोते की तरह, बिना उसके पीछे किसी बात की कोई सजगता के। तब यह कोई काम की नहीं है। हो सकता है कि यह गहरी निद्रा पैदा करे। यह एक सम्मोहन भी हो सकता है। आप बिल्कुल शिथिल भी हो सकते हैं।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि जो लोग मंत्र का जप करते हैं, वे शिथिल हो जाते हैं, वे मूर्ख हो जाते हैं। और वे एक तरह से सही हैं, किंतु केवल एक ही तरह से। यदि आप किसी भी मंत्र का जप यांत्रिक पुनरुक्ति की तरह से करते हैं, तो आप सुस्त हो जाएंगे। उन तथाकथित धार्मिक लोगों की तरफ देखें; वे सब सुस्त और मूर्ख हैं। इनमें कोई बुद्धि नहीं है, उनकी आंखों में कोई ज्योति नहीं है- जीवंत होने की। वे बस मरे हुए हैं, जस्ते की तरह से- भारी। उन्होंने जगत को कुछ भी नहीं दिया। उन्होंने सिर्फ मंत्रों का जप किया है!

सचमुच यदि आप किसी खास मंत्र को सिर्फ दोहराते जाएं बिना सजगता के, तो आप स्वयं ही उसे थक जाएंगे, और जो ऊब पैदा होगी, वह मूर्खता को पैदा करेगी। आप शिथिल हो जाएंगे। आपका सब रस खो जाएगा। एक खास आवाज बार-बार दोहराई जाने पर विक्षिप्तता भी पैदा कर सकती है। परंतु कृष्णमूर्ति एक ही अर्थ में सही हैं, अन्यथा वे पूर्णतया गलत हैं। और जब कभी कोई उनसे जो कि स्वयं के अनुभव से नहीं कह रहे हैं निर्णय लेता है, तो यह वास्तव में ठीक नहीं है। किसी भी चीज का निर्णय कुशल उदाहरण को लेकर करना चाहिए।

जप का विज्ञान केवल पुनरुक्त करना ही नहीं है। पुनरुक्ति तो द्वितीयक बात है। वह तो सिर्फ तरकीब है कुछ निर्मित करने की कि जिसके प्रति सजग हुआ जा सके। वास्तविक बात तो सजगता है, आधारभूत तो सजग होना है। यदि आप एक घर बनाते हैं, घर द्वितीयक बात है। आप उसे रहने के लिए बनाते हैं। और यदि रहना नहीं हो और आप एक घर बनाए और बाहर ही रहें, तो फिर आप मूर्ख हैं।

किसी नाम का दोहराना या किसी आवाज को पुनरुक्त करना एक घर बनाना है, उसमें रहने के लिए है, तो आप उसको आसानी से मोड़ सकते हैं बजाय अचानक होने वाली घटनाओं के। धीरे धीरे आप उसके अभ्यस्त भी हो सकते हैं, विश्राम में हो सकते हैं उसके प्रति एक गहरी सजगता बनाए हुए। परंतु वास्तविक बात, आधारभूत बात तो उसके प्रति सजग होना ही है।

जब का विज्ञान कहता है कि जब तुम अपनी ही ध्वनि को सुनने वाले बन जाओ, तो समझो तुम पहुंच गए। तब तुमने जप पूरा किया। और इसमें बहुत कुछ है। उदाहरण के लिए, जब तुम एक ध्वनि- राम का उपयोग करते हो, तो तुम्हारी परिधि का यंत्र उसको निर्मित करने में लग जाता है, तुम्हारा बोलने का यंत्र काम में संलग्न हो जाता है। यदि तुम मानसिक विधि निर्मित करते हो, तब तुम्हारा मानसिक यंत्र उसमें लग जाता है। परंतु जब तुम उसके लिए सजग हो जाते हो, तो वह सजगता केंद्र की होती है, न कि परिधि की।

यदि मैं कहता हूं- राम, तो यह मेरी बाह्य परिधि पर है। और जब मैं भीतर सुनता हूं राम, तो यह मेरे केंद्र से आ रहा है, क्योंकि सजगता केंद्र की बात है। यदि आप केंद्र पर सजग होते हैं, तो अब आपके पास प्रकाश है। आप मूर्च्छा को, अचेतन को दूर हटा सकते हैं। मंत्र का उपयोग एक टेकनीक की भांति किया जा सकता है। कितनी ही विधियां हैं, परंतु प्रत्येक विधि का एक प्रयत्न है, सजगता के लिए आप सजगता से नहीं बच सकते। आप कहीं से भी शुरू कर सकते हैं, परंतु लक्ष्य सजगता ही है।

-आत्म पूजा उपनिषद-18

24 श्वास में सुरति लगाओ

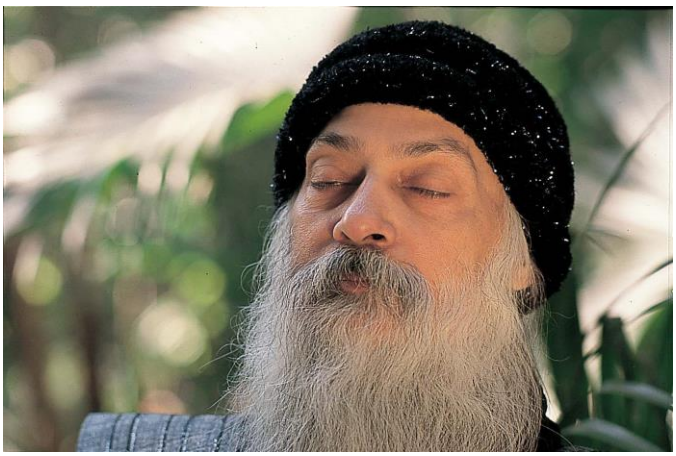

संत दयाबाई कहती है- 'सब इंद्रिन कूं रोकि करि, सुरति स्वांस में देहि'।

और जब सारी इंद्रियों को तुम बाहर की यात्रा से मुक्त कर लो तो तुम्हारा ध्यान मुक्त हो गया, क्योंकि इन्हीं सारी इंद्रियों में तुम्हारा ध्यान अटका है।

समझो, तुम ध्यान करने बैठे और पास से एक सुंदर स्त्री निकल गई, ध्यान खंडित हो गया। या पास में आ कर किसी ने रुपया बजा दिया, ध्यान खंडित हो गया। कि कोई पास गीत गाने लगा कि ध्यान खंडित हो गया। कि कोई कुछ बात करने लगा जो तुम्हारे मतलब की है कि व्यवसाय की है कि दुकान की है कि बाजार की है, कि किसी ने पास खड़े हो कर कह दिया कि बाजार में फलां चीज के भाव एकदम बढ़े जा रहे हैं--ध्वनि तुम्हारे भीतर पड़ी कि ध्यान विचलित हो गया। ध्यान इन बातों से विचलित क्यों हो जाता है? क्योंकि इन बातों का अर्थ है कि तुम्हारी वासना तो भीतर है ही, वासना पर चोट पड़ गई, वासना सजग हो गई।

ख्याल रखना, ऊर्जा तुम्हारे पास एक ही है; या तो वासना में डाल दो या ध्यान में डाल दो। अगर वासना में पड़ गई तो ध्यान टूट जाता है; अगर ध्यान में पड़ गई तो वासना टूट जाती है। और ऊर्जा एक ही है। तुम्हारे पास दो ऊर्जाएं नहीं हैं। तुम्हारी संपत्ति एक ही ऊर्जा की है। उस ऊर्जा को कहां लगाओगे, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।

सांसारिक आदमी ऐसा आदमी है जिसकी सारी ऊर्जा वासनाओं की तरफ जा रही है। धार्मिक व्यक्ति ऐसा व्यक्ति है जिसकी ऊर्जा ने वासना के विपरीत यात्रा शुरू कर दी; गंगा गंगोत्री की तरफ लौटने लगी, अपने स्रोत की तरफ वापस जाने लगी। ध्यान का इतना ही अर्थ है।

ध्यान का अर्थ है : वासना में गई ऊर्जा अपने घर की तरफ वापस लौट रही है।

तो जब तुम्हारी सारी इंद्रियां शिथिल पड़ी होंगी और सिकुड़ गई होंगी, जैसे कि कछुआ अपनी इंद्रियों को सिकोड़ कर बैठ जाता है, ऐसे जब तुम कछुए की भांति... ध्यानी कछुए की भांति हो जाता है।

देखते हो बुद्ध को बैठे हुए, किस ढंग से बैठे हैं! बिल्कुल पत्थर की मूर्ति बने बैठे हैं। हाथ पर हाथ हैं, पैर पर पैर हैं, सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद, आंख बंद--भीतर लीन हैं। भीतर क्या करते होंगे?

तुम्हें तो यही अड़चन होती है। मेरे पास लोग आते हैं, उनसे मैं कहता हूं, कभी-कभी शांत बैठ जाया करो। वे कहते हैं, शांत बैठे कर क्या करें? कुछ मंत्र इत्यादि दे दें।' मंत्र इत्यादि का मतलब कि कुछ खटपट वे करते रहेंगे। राम-राम राम-राम राम-राम... चलो। मगर खटपट के बिना वे नहीं बैठे रह सकते। राम-राम का मतलब यह हुआ कि चलो कुछ तो कर रहे हैं। वह जो बकवास भीतर चल रही वह अब भी जारी है नए ढंग से। मगर अगर उनसे कहो कुछ भी न करो, थोड़ी देर करने को छोड़ कर विश्राम करो... ध्यान यानी विश्राम।

ध्यान का अर्थ ही यह होता है कि थोड़ी देर को कुछ भी न करेंगे, सारी ऊर्जा को ऐसा ही पड़े रहने देंगे। उस तरफ जाने का जो पहला कदम है, वह है : 'सुरति स्वांस में देहि'। इसको बुद्ध ने विपस्सना कहा है, अनापानसतीयोग कहा है। यह मनुष्य जाति के इतिहास में खोजी गई सबसे बड़ी कीमिया है। जब इंद्रियों से वासना भीतर आ गई--वासना यानी ऊर्जा; अब आंखें देखने में उत्सुक नहीं, कान सुनने में उत्सुक नहीं, हाथ छूने में उत्सुक नहीं, सारी उत्सुकता वापस लौट आई, कछुआ बन कर बैठ गए--अब इस ऊर्जा को श्वास पर लगा दो। 'सुरति स्वांस में देहि'। सुरति का अर्थ होता है स्मृति, ध्यान, बोध। अब इस सारे बोध को, इस अवेयरनेस को, इस होश को, श्वास पर लगा दो। श्वास बाहर गई, श्वास भीतर गई--यह श्वास की जो माला चल रही है, इस पर लगा दो। हाथ में माला ले कर बैठने की कोई जरूरत नहीं। जब इतनी सुंदर श्वास की माला चल ही रही है स्वभाव से, तब तुम और हाथ में माला ले कर क्या करोगे? इतनी प्राकृतिक माला चल रही है, श्वास का मनका चल ही रहा है--बाहर-भीतर, बाहर-भीतर। इस बाहर-भीतर होती श्वास को देखते रहो, कुछ करो मत। श्वास बाहर गई तो होश रहे कि श्वास बाहर गई। श्वास भीतर आई तो होश रहे कि श्वास भीतर आई। चूको मत। भूल न जाओ। भूल-भूल जाओगे शुरू में; बार-बार पकड़ कर ले आओ अपने होश को, फिर श्वास पर लगा दो।

ख्याल रखना, न तो श्वास जोर से लेनी है, न धीमी लेनी है; श्वास को बदलना ही नहीं है। श्वास जैसी चल रही है वैसी की वैसी चलने देना है और सारे ध्यान को श्वास पर लगा देना है। यह प्राणायाम की प्रक्रिया नहीं है। इसमें श्वास को तेज करना या गहरा लेना या खूब फेफड़े में भरना और खाली करना, कुछ भी नहीं है। क्योंकि अगर तुम उस काम में लग गए तो फिर तुमने काम शुरू कर दिया, फिर विश्राम खो गया। फिर तुम उपद्रव में पड़ गए। अब तुमने एक नया उपद्रव बना दिया : प्राणायाम! अब तुम गिनती करोगे कि कितनी देर तक श्वास को बाहर रहने देना है, कितनी देर तक भीतर रहने देना है, कितनी देर रोकना बाहर, कितनी देर भीतर रोकना--पड़ गए तुम दुकानदारी में, हिसाब-किताब शुरू हो गया, मन उलझ गया, मन को काम मिल गया। मन काम चाहता है। इससे सावधान रहना। मन काम चाहता है। मन कहता है : कोई भी काम दे दो, हम राजी हैं। क्योंकि बिना काम के मन मर जाता है। और मन मरे तो तुम जीओ। मन मिटे तो तुम पैदा हो जाओ, तुम्हारा जन्म हो।

मन कहता है, कोई भी काम दे दो, हम किसी भी तरह जी लेंगे। कोई भी काम हो, मन कहता है हम जी लेंगे, क्योंकि मन का अर्थ होता है कर्ता-भाव। चलो प्राणायाम करेंगे! दुकान नहीं करने देते, कोई हर्जा नहीं। सिनेमा नहीं ले चलते, कोई बात नहीं। तो प्राणायाम तो करने दोगे, यह तो अच्छी बात है! यह तो पतंजलि ने कही है। यह तो योगी सदा से करते रहे हैं, यही करो। मंत्र तो बुरी बात नहीं है। गाली-गलौज न बकेंगे, व्यर्थ के विचार न करेंगे; राम-राम, यह तो प्यारा मन है, इसको तो दोहराने दो!

मन कहता है, कोई भी काम मुझे दे दो तो मैं उसी के सहारे जी लूंगा, क्योंकि कर्ता हो जाऊंगा।

मन यानी कर्ता। तुम यानी साक्षी। तो साक्षी-भाव तो तभी पैदा होता है जब कर्ता-भाव पूरा विसर्जित हो जाता है। तो इतना भी मत करना कि श्वास को तेज, धीमा, ऐसा-वैसा, तरकीब से लेना--कुछ भी नहीं करना। सब तरकीबें पागलपन की हैं। लेकिन, अगर उनको परंपरा का सहारा हो तो वे पागलपन की नहीं मालूम पड़तीं। अब एक आदमी माला लिए बैठा है, गुरिए सरका रहा है, तो हम उसको पागल नहीं कहते। लेकिन, अगर यही आदमी रूस में बैठ कर गुरिए सरकाए, फौरन पागलखाने भेज दिया जाएगा : 'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? तुम यह कर क्या रहे हो?'

एक स्त्री मुल्ला नसरुद्दीन के साथ बस में सफर कर रही थी। अपरिचित। संयोग की बात कि दोनों एक ही सीट पर बैठे थे। वह स्त्री थोड़ी बेचौन होने लगी, क्योंकि मुल्ला बाएं-दाएं सिर हिला रहा था। एक तो बस, वैसे ही पहाड़ का चढ़ाव, स्त्री को वैसे ही मितली आ रही है, और यह बगल में बैठा सिर हिला रहा है। इसके सिर हिलाने को वह चाहे भी कि न देखे तो भी मुश्किल है, क्योंकि वह बगल में ही बैठा सिर हिला रहा है। बार-बार उस पर नजर पड़ जाए। आखिर उससे न रहा गया। भली सज्जन महिला, किसी के बीच क्यों पड़ना! उसने बहुत देर तक अपनी उत्सुकता को रोका, लेकिन फिर नहीं रहा गया। उसने कहः 'महानुभाव, आप यह क्या कर रहे हैं? कोई धार्मिक प्रक्रिया कर रहे हैं? ऐसा बाएं-दाएं सिर हिलाते हैं...।'

मुल्ला ने कहा : 'नहीं, धार्मिक प्रक्रिया इत्यादि कुछ भी नहीं।' लेकिन सिर उसने हिलाना जारी रखा--जब वह बोल रहा था, तब भी।

उस महिला ने कहा : 'फिर आप क्या कर रहे हैं?'

मुल्ला ने कहा : 'इस तरह से मैं समय का ख्याल रखता हूं। एक सैकंड इस तरफ, एक सैकंड उस तरफ। इससे घड़ी भी पास रखने की जरूरत नहीं है।'

और सिर हिला रहा है वह। 'सस्ता भी है, सुविधापूर्ण भी है। किसी से पूछने की भी जरूरत नहीं।'

तो महिला उत्सुक हुई। उसने कहा कि अच्छा तो बताइए, इस वक्त कितने बजे हैं? तो मुल्ला ने सिर हिलाते कहा कि साढ़े चार। महिला ने अपनी घड़ी देखी। उसने कहा कि गलत, पौने पांच बज रहे हैं। तो मुल्ला ने जोर से सिर हिलाना शुरू कर दिया। उसने कहा कि मालूम होता है कि घड़ी सुस्त चल रही है।

इसको तुम पागल कहोगे। लेकिन, अगर यह मुल्ला कह देता कि हम राम-राम जप रहे हैं--एक राम इस तरफ, एक राम इस तरफ--तो फिर बात पागलपन की नहीं रह जाती। धर्म के नाम पर बहुत से पागलपन सुरक्षित हो जाते हैं। इसलिए धार्मिक देशों में कम लोग पागल होते हैं, क्योंकि उनको धार्मिक होने की सुविधा है। पागल होने की सुविधा नहीं है, कोई जरूरत नहीं है पागल होने की--इतना महंगा धंधा क्यों करें? अधार्मिक मुल्कों में ज्यादा लोग पागल होते हैं। उसका कारण कुल इतना है कि वहां वे कुछ भी करेंगे इस तरह का काम तो पागल समझे जाएंगे। धार्मिक देश में उपाय हैं। तुम कोई ऐसी प्रक्रिया पकड़ ले सकते हो जो धार्मिक मालूम होती है, फिर तुम्हें कोई पागल न कहेगा।

यह जो सूत्र है, यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। श्वास पर ध्यान, बिना कुछ किए, जैसी श्वास है वैसी छोड़ देनी है।

और श्वास पर ध्यान देने का उपयोग बड़ा है। पहला तो यह कि श्वास के द्वारा ही तुम शरीर से जुड़े हो। श्वास सेतु है। श्वास का धागा ही तुम्हें शरीर से बांधे हुए है। अगर तुम श्वास के प्रति जाग जाओ तो तुम्हें तत्क्षण मालूम पड़ेगा, तुम शरीर नहीं हो। श्वास के प्रति जागते ही तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम शरीर नहीं हो, तुम शरीर से अलग हो। एक बात।

दूसरी बातः श्वास को ही साधारणतः हमने जीवन समझा है। इसलिए जब किसी की श्वास बंद हो जाती है तो हम समझते हैं कि आदमी मर गया। आखिर डाक्टर भी और तो कुछ जानता नहीं; इतना ही तो उसका भी परीक्षण है कि श्वास बंद हो गई, आदमी खतम हो गया।

मृत्यु का तुम, क्या लक्षण है, मानते हो? इतना ही तो न कि जीवन अब समाप्त हुआ, क्योंकि श्वास चलनी बंद हो गई। श्वास चली तो जीवन शुरू हुआ, श्वास गई तो जीवन गया। तो श्वास और जीवन पर्यायवाची हो गए हैं। साधारणतः हैं भी। जब तुम श्वास के प्रति जागोगे तो तुम पाओगे कि मैं श्वास भी नहीं हूं। जो जागा हुआ है वह श्वास से बिल्कुल अलग है, बिल्कुल पृथक है। श्वास तो उसके सामने चल रही है। श्वास तो उसके लिए दृश्य है। और द्रष्टा तो दृश्य से अलग हो जाता है।

तो पहली क्रांति तो घटती है इस सूत्र से कि लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं, साफ हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। और दूसरी और भी गहरी क्रांति घटती है कि मैं श्वास भी नहीं हूं। तो श्वास और देह दोनों के पार जो मैं हूं, उस स्रोत से संबंध जुड़ने शुरू हो जाते हैं।

यह छोटा सा सूत्र बड़ा बहुमूल्य है :

लेकिन इसके पहले कि तुम सुरति को श्वास में लगाओ, कछुआ बन जाना जरूरी है। नहीं तो सुरति श्वास में लग ही न सकेगी। क्योंकि सुरति होगी ही नहीं तुम्हारे पास। सुरति बड़ी सूक्ष्म शक्ति है। या तो इंद्रियों से बहती रहती है, तो तुम्हारे हाथ में ही नहीं होती; और इंद्रियां तुम्हारी सुरति को न मालूम कहां-कहां भटकाए ले जाती हैं। तुम्हारी सुरति तुम्हारे हाथ में नहीं है; इंद्रियों के द्वारा उड़ गया है सुरति का पक्षी, दूर-दूर भटक रहा है। और एक-एक इंद्रिय के द्वारा अलग-अलग दिशाओं में चला गया है। इसलिए तुम्हारी सुरति खंडित भी हो गई है। फिर प्रत्येक इंद्रियां तुम्हें जो जगत के संबंध में बता रही हैं, वही तुम सोचते हो जीवन है, वही तुम सोचते हो सत्य है। इंद्रियों के पास सत्य को जानने का कोई भी उपाय नहीं है। इंद्रियां तो बड़ी अंधी हैं। सत्य को जानने का उपाय तो तुम्हारे भीतर के साक्षी के पास है, और किसी के पास नहीं है। अगर तुमने इंद्रियों की बात सुनी, कछुआ न बने, तो इंद्रियां तुम्हें भटकाती रहेंगी।

तुमने देखा नहीं, कभी रात के अंधेरे में रास्ते पर पड़ी रस्सी सांप मालूम पड़ जाती है! तुम भाग खड़े हुए, छाती धड़कने लगी, घबड़ा गए। तुम्हारी आंख ने देखा। तुम कहते हो, अपनी आंख से देखा सांप था। जरा रोशनी ले कर जाओ तो पता चलता है रस्सी पड़ी है। आंख तो बड़ी आसानी से धोखा खा जाती है। जरा धुंधला हुआ कि आंख धोखा खा जाती है।

रात तुमने देखा, अपने ही घर में अपना ही कुर्ता टंगा देख कर तुम समझते हो कोई चोर खड़ा है! रोशनी जलाई, अपना ही कुर्ता टंगा है। आंख का तो कोई बड़ा भरोसा नहीं है। रोशनी चाहिए। बाहर भी भरोसा नहीं है--बाहर भी रोशनी चाहिए--तो भीतर तो क्या भरोसा! भीतर भी रोशनी चाहिए। वैसी रोशनी साक्षी-भाव, सुरति से पैदा होती है। भीतर का दीया सुरति से जलता है।

इंद्रियां तुम्हें जो बता रही हैं, वह तो सिर्फ उनकी आदत है। तुमने जो देखने की आदत बना ली है, वह तुम्हें दिखाई पड़ता रहता है।

तुमने ख्याल नहीं किया, अगर इस बगीचे में एक लकड़हारा आए तो उसे फूल दिखाई पड़ेंगे ही नहीं! वह लकड़ियां देखेगा। वह सोचने लगेगा कौन सा वृक्ष काट कर बाजार में बेच लूं। अगर कोई माली आ जाए, फूलों का पारखी आ जाए तो उसको लकड़ियां नहीं दिखाई पड़ेंगी; उसे फूल दिखाई पड़ेंगे। वह सोचने लगेगा : 'अहा, कितने सुंदर फूल!' अगर कोई कवि आ जाए तो उसे फूल भी सीधे-सीधे नहीं दिखाई पड़ेंगे; उसे फूलों का सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। सौंदर्य पर उसकी नजर होगी। अगर कोई चित्रकार आ जाए तो उसे रंग दिखाई पड़ेंगे--अनूठे रंग दिखाई पड़ेंगे, जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते! आमतौर से तुम सोचते हो जब तुम बगीचे में आते हो तो तुम्हें भी वही दिखाई पड़ता है जो तुम्हारे साथी को दिखाई पड़ रहा है। इस गलती में मत पड़ना। क्योंकि साथी ने अपनी आंखें अगर और किसी बात के लिए अभ्यस्त की हैं तो उसे कुछ और दिखाई पड़ेगा। तुम्हें कुछ और दिखाई पड़ेगा।

इंद्रियां तो अभ्यास हैं। इनसे तो हम जो देखने का अभ्यास कर लेते हैं वही दिखाई पड़ने लगता है। कान भी अभ्यास है। इससे हम जो सुनने का अभ्यास कर लेते हैं वही सुनाई पड़ने लगता है। स्वाद भी अभ्यास है। तुमने ख्याल नहीं किया? अगर पहली दफे कॉफी पीओ तो अच्छी थोड़े ही लगती है। कॉफी का भी अभ्यास करना पड़ता है। पहली दफे शराब पी हो तो अच्छी थोड़े ही लगती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उसके पीछे सदा पड़ी रहती थी कि तुम शराब बंद करो, बंद करो। नहीं सुना, नहीं सुना, एक दिन वह पहुंच गई शराब-घर। मुल्ला थोड़ा डरा भी, क्योंकि वह कभी शराब-घर नहीं आई थी और यह बात ठीक भी नहीं कि भले घर की स्त्री और शराब-घर आए। लेकिन अब कुछ कर भी न सका। वह आ कर उसके पास बैठ गई। उसने कहा : 'आज मैं भी पीऊंगी। जब तुम सुनते नहीं तो जरूर शराब में कुछ होगा; मैं भी पीऊंगी।' अब मुल्ला यह भी न कह सका कि मत पीओ, शराब अच्छी चीज नहीं। और यही तो पत्नी सदा कहती रही। यह हद हो गई। अब इससे क्या कहे? तो उसने कहा, ठीक। डाल दी शराब, डाल दी एक प्याली में और कहा, पी ले। उसने पी तो एकदम थूक दी। कड़वी, तिक्त! उसने कहा, ऐसी सड़ी-गली चीज तुम पीते हो! और मुल्ला ने कहा, सुनो, और तू सोचती थी हम यहां मजा कर रहे हैं?

अभ्यास करना होता है। अभ्यास करने पर कड़वा भी मीठा लगने लगता है। अभ्यास अभ्यास की बात है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन मुझसे कहा कि ट्रेन में आ रहा था, एक लड़की मेरे सामने वाली सीट पर बैठी थी, रेडियो अनाउंसर थी।

तो मैंने उससे पूछा : तुमने कैसे जाना? पूछा था?

उसने कहा : नहीं, पूछा नहीं।

'फिर तुमने कैसे जाना कि रेडियो अनाउंसर थी?'

तो उसने कहा कि जब मैंने उससे समय पूछा था तो बोली, नौ बज कर पंद्रह मिनट हुए हैं, हमेशा गोदरेज ताला लगाइए और चौन की नींद सोइए। इससे मैं समझा कि रेडियो अनाउंसर है।

अभ्यास हो जाता है।

तुम अपने जीवन में अगर गौर से देखोगे तो तुम जो देखते हो, तुम जो सुनते हो, जो तुम समझते हो, वह सब अभ्यास है; सत्य से उनका कोई संबंध नहीं। फिर जब एक तरह का अभ्यास इंद्रियों को हो जाता है तो उन अभ्यास के घेरों के बाहर आना बहुत मुश्किल हो जाता है।

छोटे बच्चे एक तरह से देखते हैं दुनिया को, तुम सब जानते हो, क्योंकि तुम भी छोटे बच्चे थे कभी। तुम्हारे घर छोटे बच्चे हैं। उनके देखने का एक ढंग है। जवान दूसरे ढंग से देखते हैं। बूढ़े तीसरे ढंग से देखते हैं। अगर तुम बूढ़े हो गए तो तुम्हें भलीभांति याद होगी। अगर तुम बेईमान नहीं हो तो भूल नहीं होओगे कि बच्चे थे तब तुम एक तरह से दुनिया को देखते थे; जवान थे तब दूसरी तरह से दुनिया को देखते थे। दुनिया वही है। फिर बूढ़े हुए तो तुम तीसरी तरह से दुनिया देखने लगे।

तो इंद्रियों का भरोसा कम है। जैसी वासना होती है वैसा ही दर्शन हो जाता है। जब बच्चे थे तो तुम्हें सुंदर स्त्रियों में कोई रस न था या सुंदर पुरुषों में कोई रस न था; तुम्हें धन में भी कोई रस न था। तुम खेल-खिलौनों में लवलीन थे। वही तुम्हारी दुनिया थी। जवान हुए, खेल-खिलौने छूट गए। तुम सौंदर्य में, देह में, धन में, पद में उत्सुक हो गए। फिर बुढ़ापा आया, वे खिलौने भी छूट गए। इसलिए तो बूढ़े आदमी और जवान आदमी की बात नहीं हो पाती, बड़ी मुश्किल हो जाती है। बाप-बेटे की बात थोड़े ही हो पाती है। बात हो ही नहीं

सकती, क्योंकि वे दोनों अलग भाषाएं बोलते हैं। उनका जीवन को देखने का ढंग अलग है। मां-बेटे की बात थोड़े ही हो पाती है, बहुत मुश्किल है। न बेटा बाप को समझता है न बाप बेटे को समझता है। समझ ही नहीं सकते। क्योंकि बाप जहां से देख रहा है वहीं से बेटा देख नहीं सकता कभी। और जहां से बेटे देख रहा है, वहां से बाप ने कभी देखा था और पाया सब गलत था। अब बड़ी मुश्किल है कि वह उसको फिर उस भांति देखे।

तुम अगर गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि जो हमारा अनुभव है वह रोज बदल रहा है। और जब अनुभव बदल जाता है तो हमारी आंखें हमें कुछ और खबर देने लगती हैं। जब तुम जवान हो तब तुम्हें शरीर दिखाई पड़ते हैं। जब तुम बूढ़े हो जाते हो, जब तुम्हारा शरीर जर्जर-जीर्ण हो जाता है, तो तुम्हें हर शरीर में मौत दिखाई पड़ने लगती है। जवान से जवान शरीर में भी तुम्हें मौत की झलक दिखाई पड़ती है कि मौत आनेवाली है। सुंदर से सुंदर शरीर में भी तुम्हें कब्र, चिताओं की लपटें दिखाई पड़ने लगती हैं।

एक स्त्री अपने दो बच्चों को ले कर एक सहेली से मिलने गई। छोटे बच्चे को देखकर उसकी सहेली ने कहा, इसकी आंखें बिल्कुल मां की तरह हैं, तुम्हारी तरह हैं। मां बोली, और माथा बाप का है। और पाजामा बड़े भाई का है, उसके बड़े बच्चे ने कहा।

अब जब सभी चीजें बंटी जा रही हैं कि आंखें मां जैसी और माथा बाप जैसा, तो वह भी क्यों चुप रहे--'पाजामा उसका है, जो यह छोटा भाई पहने हुए है।' अपनी-अपनी दृष्टि अपनी-अपनी जगह पर ठीक है। उसको न अभी रस है माथे में और न रस है आंखों में, अभी पाजामा उसका यह पहने हुए है। यह बात जंच नहीं रही है।

रोज-रोज अगर तुम इसका थोड़ा स्मरण रखोगे तो तुम पाओगे इस अभ्यास से मुक्त हुआ जा सकता है। और तुम्हारी आत्मा न तो बचपन में है, न जवानी में, न बुढ़ापे में, क्योंकि आत्मा की कोई आयु नहीं है। और तुम्हारी आत्मा का कोई अभ्यास नहीं है। आत्मा तो सिर्फ बोधस्वरूप है।

तो इंद्रियों को कछुए की तरह सिकोड़ लेने का अर्थ है, पुराने सब अभ्यास-जाल को बंद कर देना, फिर देखना। पुराने अभ्यास से देखोगे, गलत दिखाई पड़ेगा। जो अभ्यास किया है, वही दिखाई पड़ेगा। दृष्टि शुद्ध न होगी। आंख पर चश्मा होगा, चश्मे रंगीन होंगे, तो दुनिया भी तुम्हें रंगीन मालूम पड़ेगी।

'सब इंद्रिन कूं रोकि करि, सुरति स्वांस में देहि'।

तो धीरे-धीरे हटा लो इंद्रियों से अपनी ऊर्जा को। अगर चौबीस घंटे न कर सको तो कभी घड़ी भर तो चौबीस घंटे में करो। और मैं तो तुम्हें सलाह दूंगा कि अगर तुम बैठ भी जाओ कछुए की तरह तो भी लाभ होगा। ठीक कछुए की तरह। गद्दा बिछा लो, कछुए की तरह बैठ जाओ हाथ-पैर सिकोड़ कर। जैसा मां के गर्भ में बच्चा होता है गर्भासन--ठीक वैसे बैठ जाओ। ठीक ऐसा ही ख्याल करो कि तुम कछुए हो, सारी इंद्रियों को सिकोड़ लिया, सिर को भी ढाल कर बैठ जाओ। चाहो तो एक चादर ऊपर ओढ़ लो। बंद हो गए। और अब श्वास पर अपनी सुरति को लगा दो। तुम बहुत रस पाओगे और बहुत क्रोध जगेगा। बड़ी प्रगाढ़ चेतना पैदा होगी। और पहले दिन ही प्रतीक्षा मत करना कि यह सब हो जाए। थोड़ा धैर्य रखना।

तो इसको मैं कूर्मासन कहता हूं। तुम बना लो इस आसन को। क्योंकि शरीर की जो अवस्था तुम बनाते हो, उसके द्वारा तुम्हें सहारा मिलता है भीतर की अवस्था बनाने का भी। अगर तुम शरीर को ठीक कछुए की तरह सिकोड़ कर बैठ गए चादर ओढ़ ली, कछुए की ढाल बन गई, ऊपर से चादर और तुम भीतर सिकुड़ गए, आंखें बंद कर लीं और अब श्वास जैसी चल रही है धीमी, उसको देखते रहे। कुछ मत करो। श्वास बाहर गई, देखो, श्वास भीतर आई, देखो। ऐसा कहना भी नहीं है कि श्वास बाहर गई है, श्वास भीतर आई। बस देखते रहो। कभी-कभी चूक जाओगे। कभी-कभी भूल जाओगे पुरानी आदतवश। जब याद आ जाए तो रोने-चीखने की जरूरत नहीं कि मैं पापी, कि मेरा मन भटक गया। जब याद आ जाए, फिर मन को वहीं वापस ले आओ, बिना पछताए। कुछ पछतावे की जरूरत नहीं। भटक गया तो भटक गया। उसको भी स्वीकार कर लो। फिर चुपचाप अपने ध्यान पर आ जाओ। नहीं तो होता क्या है? पहले मन

भटका, फिर तुम पश्चात्ताप करने लगे तो पश्चात्ताप में भटका। यह दोहरा उपद्रव हो गया। शुरू-शुरू में भटकेगा ही मन। जल्दी ही यह बात होने वाली नहीं है। जन्मों-जन्मों के अभ्यास के विपरीत तुम जा रहे हो। थोड़ा समय लगेगा। स्वाभाविक है, ऐसा मान कर, जब भटक गया भटक गया, जब याद आ गई, फिर अपनी श्वास पर ध्यान को लगा लिया--बिना पश्चात्ताप के, बिना किसी अपराध-भाव के, कि बड़ी चूक हो गई, कि बड़ा पाप हो गया। कुछ नहीं हुआ। स्वाभाविक है।

-जगत तरैया भोर की-7

25 ध्यान प्रयोग हेतु निर्देश

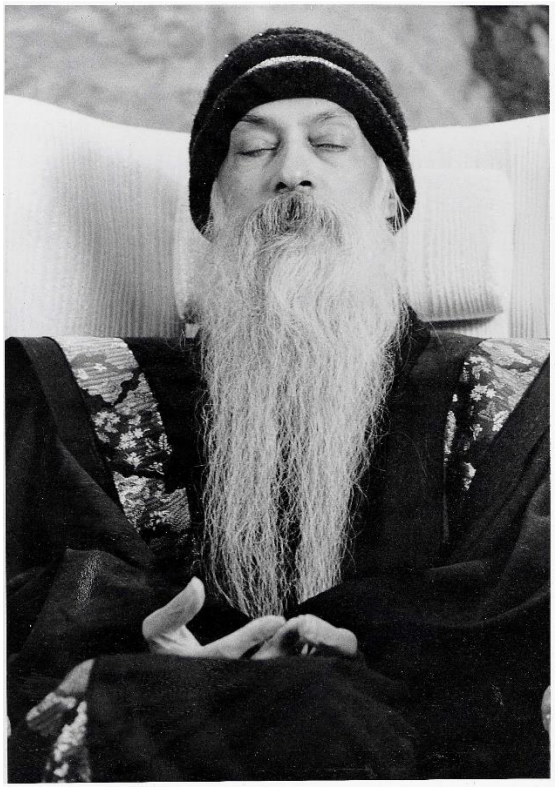

ध्यान कैसे करो?

ध्यान के लिए पूछते हो कि कैसे करें? कुछ भी न करो। बस, शांति से श्वास-प्रश्वास के प्रति जागो। होशपूर्वक श्वास-पथ को देखो। श्वास के आने-जाने के साक्षी रहो। यह कोई श्रमपूर्ण चेष्टा न हो, वरन शांत और शिथिल विश्रामपूर्ण बोध-मात्र हो। और फिर तुम्हारे अनजाने ही, सहज और स्वाभाविक रूप से एक अत्यंत प्रसादपूर्ण स्थिति में तुम्हारा प्रवेश होगा। इसका भी पता नहीं चलेगा तुम कब प्रविष्ट हो गए हो। अचानक ही तुम अनुभव करोगे कि तुम वहां हो, जहां कि कभी नहीं थे।

साक्षीभाव कैसे साधें?

साक्षी-भाव की साधना के लिए इन तीन सूत्रों पर ध्यान दो-

1. संसार के कार्य में लगे हुए श्वास के आवागमन के प्रति जागे हुए रहो। शीघ्र ही साक्षी का जन्म हो जाता है।

2. भोजन करते समय स्वाद के प्रति होश रखो। शीघ्र ही साक्षी का आविर्भाव होता है।

3. निद्रा के पूर्व जब कि नींद आ नहीं गयी है और जागरण जा रहा है- सँभलो और देखो। शीघ्र ही साक्षी पा लिया जाता है।

-ध्यानयोगः प्रथम और अंतिम मुक्ति

मन अशांत हो तो गहरी सांस लो

ऐसी परिस्थिति में, जब आप सक्रिय ध्यान विधियों का प्रयोग नहीं कर सकते, आपके लिये एक साधारण लेकिन प्रभावशाली निष्क्रिय विधि उपलब्ध हैं। श्वास को देखना एक ऐसी विधि है जिसका प्रयोग कहीं भी, किसी भी समय किया जा सकता है, तब भी जब आपके पास केवल कुछ मिनटों का समय हो। आती-जाती श्वास के साथ आपको केवल छाती या पेट के उतार-चढ़ाव के प्रति सजग होना है। या फिर इस विधि को आजमायें :

प्रथम चरण : भीतर जाती श्वास को देखना।

अपनी आंखें बंद करें अपने श्वास पर ध्यान दें। पहले श्वास के भीतर आने पर, जहां से यह आपके नासापुटों में प्रवेश करता है, फिर आपके फेफड़ों तक।

दूसरा चरण : इससे आगे आने वाले अंतराल पर ध्यान।

श्वास के भीतर आने के तथा बाहर जाने के बीच एक अंतराल आता है। यह अत्यंत मूल्यवान है। इस अंतराल को देखें।

तीसरा चरण : बाहर जाती श्वास पर ध्यान। अब प्रश्वास को देखें।

चौथा चरण : इससे आगे आने वाले अंतराल पर ध्यान।

प्रश्वास के अंत में दूसरा अंतराल आता है : उस अंतराल को देखें। इन चारों चरणों को दो से तीन बार दोहरायें- श्वसन-क्रिया के चक्र को देखते हुए, इसे किसी भी तरह बदलने के प्रयास के बिना, बस केवल नैसर्गिक लय के साथ।

पांचवां चरण : श्वासों में गिनती।

अब गिनना प्रारंभ करें : भीतर जाती श्वास- गिनें, एक (प्रश्वास को न गिनें) भीतर जाती श्वास- दो; और ऐसे ही गिनते जायें दस तक। फिर दस से एक तक गिनें। कई बार आप श्वास को देखना भूल सकते हैं या दस से अधिक गिन सकते हैं। फिर एक से गिनना शुरू करें।

इन दो बातों का ध्यान रखना होगा : सजग रहना, विशेषतः श्वास की शुरुआत व अंत के बीच के अंतराल के प्रति। उस अंतराल का अनुभव हैं आप, आपका अंतर्तम केंद्र, आपका अंतस। और दूसरी बातः गिनते जायें परंतु दस से अधिक नहीं; फिर एक पर लौट आयें; और केवल भीतर जाती श्वास को ही गिनें। इनसे सजगता बढ़ने में सहायता मिलती है। आपको सजग रहना होगा नहीं तो आप बाहर जाती श्वास को गिनने लगेंगे या फिर दस से ऊपर निकल जायेंगे। यदि आपको यह ध्यान विधि पसंद आती है तो इसे जारी रखें। यह बहुमूल्य है।

जमीन पर जापान शायद अकेला देश है, जहां अधिकतम लोग प्रसन्नचित दिखाई पड़ते हैं। इस संबंध में खोज-बीन चलती थी कि वहां के लोगों की प्रसन्नता का कारण क्या है? तो बहुत अजीब बात पता चली और वह यह कि जापान में छोटे-छोटे बच्चों को मां-बाप एक बात जरूर सिखाते हैं- कि जब भी क्रोध हो, मन अशांत हो, चिंतित हो, तो गहरी श्वास लो और श्वास पर ध्यान करो। इससे उनके पूरे व्यक्तित्व में बुनियादी अंतर हुआ है।

तो इसे कभी भी, दिन में किसी भी क्षण में अशांति मालूम पड़े, क्रोध मालूम पड़े, चिंता मालूम पड़े तो एक मिनट के लिए प्रयोग करके देखें। गहरी श्वास ले और श्वास पर ध्यान करें। और जब ध्यान के लिए बैठें, तब तो अनिवार्य रूप से दस मिनट के लिए पहले गहरी श्वास लेकर। अगर इस प्रयोग को ही एक घंटे पूरा किया जाए, तो अलग से और कुछ करने की जरूरत भी नहीं है।

विपस्सना ध्यान (संगीत व निर्देश के बिना)

यह ध्यान विधि भगवान बुद्ध की अमूल्य देन है। ढाई हजार वर्षों के बाद भी उसकी महिमा में, उसकी गरिमा में जरा भी कमी नहीं हुई। और ओशो का मानना है कि आधुनिक मनुष्य की अंतर्यात्रा की साधना में विपश्यना सर्वाधिक कारगर सिद्ध हो सकती है। विपश्यना का अर्थ है- अंतर्दर्शन यानी भीतर देखना।

यह ध्यान पचास मिनट का है और बैठकर करना है। बैठें, शरीर और मन को तनाव न दें और आंखें बंद रखें। फिर अपने ध्यान को आती-जाती श्वास पर केंद्रित करें। श्वास को किसी तरह की व्यवस्था नहीं देनी है; उसे उसके सहज ढंग में चलने दें। सिर्फ ध्यान को उसकी यात्रा के साथ कर दें।

श्वास की यात्रा में नाभि-केंद्र के पास कोई जगह है, जहां श्वास अधिक महसूस होती है। वहां विशेष ध्यान दें। अगर बीच में ध्यान कहीं चला जाए तो उससे घबराएं न। अगर मन में कोई विचार या भाव उठे तो उसे भी सुन लें, लेकिन फिर-फिर प्रेमपूर्वक ध्यान को श्वास पर लाएं। और नींद से बचें।

26 विपस्सना ध्यान (संगीत व निर्देश सहित)

-मा अमृत प्रिया

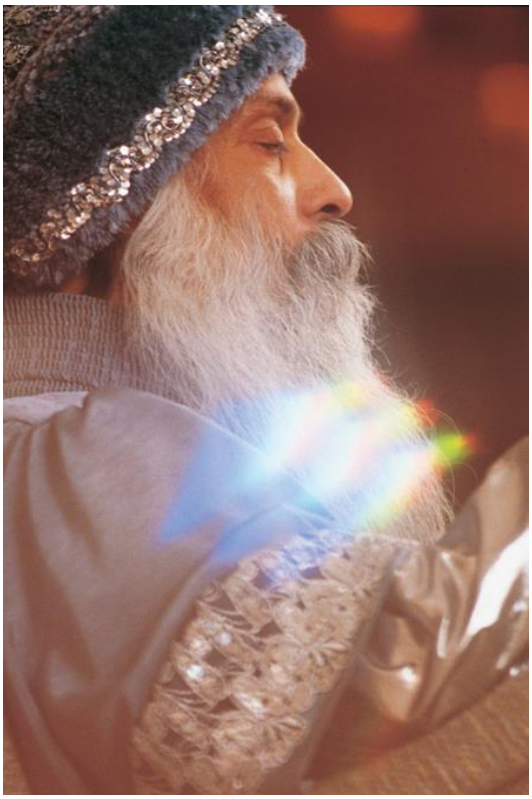

आज की ध्यान विधि हमारी सांसों से संबंधित हैं। श्वासों का महत्व समझाते हुए परमगुरु ओशो कहते हैं- बुद्ध ने सांसों का प्रयोग एक ही तीर से दो काज करने के लिए किया। पहला सजगता के लिए और जहां तक श्वास जाएगी वहां तक जागरण भी फैलेगा। इसी भांति शरीर के अणु-अणु को होश से भर देने का उपाय है यह प्रयोग। बुद्ध कहा करते हैं- होशपूर्वक श्वास लो।

सांस सबसे सरल माध्यम हैं स्वयं से जुड़ने का, अपने केन्द्र तक पहुंचने का। बुद्ध का मार्ग मध्य मार्ग था। दोनों अतियों से बचकर- मध्य में संतुलन। श्वास मध्य में हैं। ना बाहर है, ना भीतर हैं। भीतर है चेतना। बाहर है शरीर। दोनों के मध्य में जोड़ सेतु की तरह है श्वास। पदार्थ से परमात्मा की तरफ जाने के लिए, शरीर से आत्मा की तरफ जाने के लिए श्वास एक पुल का काम करती हैं। शरीर एक किनारा हैं, आत्मा दूसरा किनारा हैं और इस नदी के ऊपर श्वास का पुल हैं। यह मध्य में है और इसलिए बुद्ध ने विपस्सना पर इतना ज़ोर दिया। वे मध्यम मार्ग के प्रवर्तक हैं। वे कहते हैं, दि गोल्डन मीन, मज्झिम निकाय। ठीक बीच में चलो। ना तो पदार्थवादी हो जाओ, ना

परमात्मवादी हो जाओ। श्वास के प्रति जागरूक होओ। श्वास का एक छोर पौद्गलिक है, पदार्थ है। श्वास का दूसरा छोर अपौद्गलिक है, चैतन्य है।

एक युवक, राजकुमार श्रोण, बुद्ध के पास दीक्षित हुआ। राजधानी भरोसा न कर सकी। किसी ने कभी कल्पना में भी नहीं सोचा था कि श्रोण और भिक्षु हो जायेगा! सम्राट था श्रोण, और ख्यातिनाम सम्राट था। उसकी ख्याति भोगी की तरह थी। उसके राजमहल में सबसे सुंदर स्त्रियां थीं उस जमाने की। उसके महल में श्रेष्ठतम शराब सारी दुनिया के कोनों-कोनों से आकर इकट्ठी थी।

दूसरे भिक्षु तो ठीक पटे हुए रास्ते पर चलते हैं, लेकिन श्रोण कांटों और झाड़ियों में चलता है। उसके पैर लहू-लुहान हो गये। धूप होती तो दूसरे भिक्षु वृक्षों की छाया में बैठते, श्रोण धूप में ही खड़ा रहता। दूसरे भिक्षु तो वस्त्र पहनते, उसने सिर्फ लंगोटी लगा रखी थी। और ऐसा लगता जैसे लंगोटी भी छोड़ देने की आतुरता है। और एक दिन उसने लंगोटी भी छोड़ दी। दूसरे भिक्षु तो दिन में एक बार भोजन करते, श्रोण दो दिन में एक बार भोजन करता। दूसरे भिक्षु तो बैठकर भोजन करते, श्रोण खड़े-खड़े ही भोजन करता। अन्य भिक्षु तो पात्र रखते, श्रोण पात्र भी नहीं रखता था। करपात्री था, हाथ में ही भोजन लेता था। सूख गया। उसकी बड़ी सुंदर देह थी। दूर-दूर से लोग उसकी देह को देखने आते थे। उसका चेहरा बड़ा लावण्यपूर्ण था, अति सुंदर था। भिक्षु हो जाने के तीन महीने बाद उसे कोई देखता तो याद भी नहीं कर सकता था कि यही सम्राट श्रोण है। पैरों में छाले पड़ गये थे, शरीर काला पड़ गया था, सूख कर हड्डी-हड्डी हो गया था; लेकिन वह और कसे जाता था।

फिर तो श्रोण ने भोजन भी बंद कर दिया। उसने पानी लेना भी बंद कर दिया। अति, और अति पर जाने लगी। फिर तो ऐसा लगा कि अब वह दो-चार दिन का मेहमान है और मर जायेगा। तो बुद्ध उसके द्वार पर गए। वृक्ष के नीचे झोपड़ा बना दिया था उसके विश्राम के लिए। वह पड़ा था। बुद्ध ने उससे कहा : श्रोण, मैं तुझसे एक बात पूछने आया हूं। मैंने सुना है कि जब तू सम्राट था तो तुझे वीणा बजाने की बड़ी आतुरता रहती थी। तू वीणा बजाने में बड़ा कुशल भी था। तेरा बड़ा रस था वीणा में। मैं तुझसे एक प्रश्न पूछने आया हूं- जब वीणा के तार बहुत ढीले हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं? श्रोण ने कहा : आप भी कैसी बात करते हैं, आप जानते हैं भलीभांति, तार बहुत ढीले हों तो संगीत कैसे पैदा होगा, वह टंकार ही पैदा नहीं हो सकती!

बुद्ध ने कहा : फिर मैं यह पूछता हूं कि तार अगर बहुत कसे हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं? श्रोण ने कहा : बहुत कसे हों तो छूते ही तार टूट जायेंगे, संगीत पैदा नहीं होगा। सिर्फ तारों के टूटने की आवाज आयेगी। साज के टूटने की आवाज आयेगी, संगीत कैसे जन्मेगा?

तो बुद्ध ने कहा : मैं तुझे याद दिलाने आया हूं। जैसे तुझे वीणा का अनुभव है, वैसे ही मुझे जीवन-वीणा का अनुभव है। मैं तुझसे कहता हूं, जीवन के तार भी बहुत कसे हों तो संगीत पैदा नहीं होता, और जीवन के तार बहुत ढीले हों तो भी संगीत पैदा नहीं होता। तार मध्य में होने चाहिए श्रोण; न बहुत कसे, न बहुत ढीले। संगीतज्ञ की बड़ी से बड़ी कुशलता इसी में है कि वह तारों को ठीक मध्य में ले आये, उसी को साज का बिठाना कहते हैं।

यदि आप थोड़े जागेंगे तो पाएंगे- जब हम प्रसन्न होते हैं तब सांस का विशेष पैटर्न होता है। जब हम दुखी होते तब अलग पैटर्न होता है। हर भावना, मूड के साथ श्वास का एक पैटर्न जुड़ा हुआ है। यदि हम अपनी चित्त दशा बदलेंगे तो सांस का पेटर्न भी बदलेगा। उल्टा भी सत्य है- यदि हम अपनी सांस के पेटर्न को बदलेंगें तो चित्त दशा भी परिवर्तित होगी। इसके यह अर्थ होता है- हमारा शरीर, मन, हृदय; सब कुछ सांसों से जुड़ा हुआ है। तो सांस के माध्यम से ध्यान में उतरना सरल होगा और खूब प्रभावशाली भी।

हमारी सांस जिस पर पूरा जीवन टिका है अगर हम उसके प्रति जागृत होंगे तो इस सजगता की ज्योति से हमारा कोना-कोना, एक-एक कोष्ठ रोशन हो उठेगा। भगवान बुद्ध ने जगत को एकदम सरल लेकिन बहुत कारगर विधि दी- इसका नाम है विपस्सना।

यह शब्द बना है- वि और पश्यना से। पश्यना का अर्थ होता- देखना, वि का अर्थ होता- पीछे लौटकर। विपस्सना का अर्थ हुआ, पलटकर देखना। सजग होकर स्वयं को देखना। विपस्सना का मतलब होता है साक्षी होना, द्रष्टा होना। आज हम अपने सांसों के प्रति भी होश और स्वयं के प्रति भी होश को साधने का प्रयास करेंगे।

जब आप सांसों के प्रति जागेंगे तो पाएंगे कि अहर्निश आप सांसों के माध्यम से अस्तित्व से जुड़े हुए हैं। जब इस एकत्व का स्मरण आता है तो व्यक्ति आह्लाद से भर जाता है। टूटने में विषाद है, दर्द है। जुड़ने में, मिलने में आनंद है। जब हम एक व्यक्ति से जुड़ते हैं प्रेम में, तब खुशियों से भर जाता हैं जीवन। तो आप अभी सोच भी नहीं सकते कि जीवन कितना आनंदित होगा जब पूरी समष्टि के साथ एकत्व महसूस होता है।

अहंकार हमें तोड़ देता, टुकड़े-टुकड़े कर देता है। हमें अहसास दिलाता है कि हम छोटे द्वीप हैं। सबसे काटकर, विलग, अकेला कर देता है। और वह ध्यान विधि ठीक उल्टा करती है- फिर से वह बीच की दीवारों का भ्रम तोड़कर हमें अस्तित्व के संग एकत्व की अनुभूति करवाती है।

प्रथम चरण है- मंगलकामना। शुरूवात करेंगे मंगलकामना से फिर यौगिक सांस लेंगे- हम तीन तरह के प्रयोग करेंगे। अंततः प्रयत्नरहित, एर्फटलेसनेस दशा में उतरेंगे।

दूसरा- अंतर्कुंभक। लंबी गहरी सांस लें और जितनी देर आसानी से भीतर रोक सकते हैं रोके रहें। फिर छोड़ दें। यही क्रिया दोहराएं होशपूर्वक। यह जो सांस रोकने का क्षण यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जब आप सांस के पेटर्न और आवाज के प्रति जागेंगे। तो आपकी सजगता गहराई फिर धीरे-धीरे आप इससे भी जो सूक्ष्म है उसके प्रति भी जाग जाएंगे।

तीसरा- बहिर्कुंभक। लंबी सांस छोड़ें। बाहर फेंक दें। और फिर रोंके। जितना आसानी से हो सके, बिना किसी तनाव के उतना ही रोकें। नहीं तो शरीर को कष्ट होगा फिर ध्यान में उतरना मुश्किल होगा।

चौथा- अनापानसती योग। लंबी गहरी सांस। अब प्रयत्न कम करते चलें। श्वास रहे और होश रहे।

अनापानसती योग का अर्थ हुआ आती-जाती श्वास को देखना। प्राण शब्द संस्कृत का पाली भाषा में पान कहलाता था। बुद्ध पाली भाषा का उपयोग करते थे। तो पान का अर्थ हैं भीतर जाती श्वास और आपान का अर्थ है बाहर आती श्वास। पान-आपान दोनों मिलकर अनापान कहलाए, आती-जाती श्वास। इन्सीपिरेशन एण्ड एक्सपीरेशन। सती का अर्थ है स्मृति। जैसे समासति, सम्यक-स्मृति। अनापानसती यानि आती-जाती श्वासों का स्मरण और योग का अर्थ हैं जुड़ना तो आती-जाती श्वास के माध्यम से, उसका स्मरण रखते हुए धीरे-धीरे स्वयं से, अस्तित्व से, समष्टि से जुड़ना। यही है अनापानसती योग।

तीन प्रयोगों से शरीर और मन भी शान्त होने लगेगा। तब सारे प्रयास छोड़े। अब साक्षी भाव। सांस को सामान्य होने दे। कोई विशेष पैटर्न नहीं हो। जैसे चल रही है, वैसे चलने दें। बस उसके प्रति जागे रहें। यदि विपस्सना गलत ढंग से किया जाए, साधक केवल साँसों के प्रति ही जागरूक हो और स्वयं के प्रति मूर्च्छित हो, साक्षी भाव ना साधे तो भुलक्कड़पन पैदा होगा। इस बात का विशेष ख्याल रखना।

अंत में यह भी छोड़ दें। अब शांत हो जाएं, शिथिल हो जाएं। स्व-बोध में रमण करें।

इस ध्यान में कुल 7 चरण हैं।

पांचवां- साक्षी भाव। छठवां- शिथिलीकरण। सातवां चरण- आत्मस्मरण। अंत में अहोभाव पूर्वक ध्यान से लौटें।

कबीर साहब के वचन हैं-

मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।

खोजी हुए तो तुरतयी मिलिहों, पल भर की तलाश में।

कहे कबीर सुनो भई साधो, सब सांसों की सांस में।

इन सांसों के सांस में, अर्थात् गैप में, अंतराल में वह मिलता है। आओ चलते है उस परम मिलन के लिए।

27 सहज सांस की ध्यान विधि

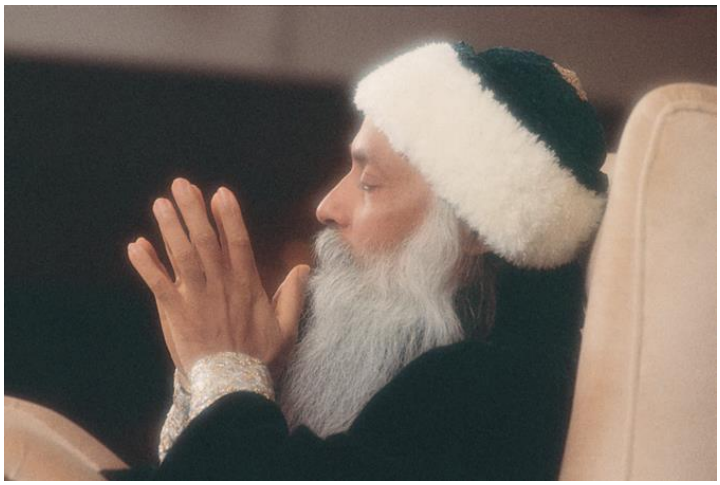

यह ध्यान कब करना?

जब भी तुम्हें समय मिले। कोई निश्चित समय तय करने की जरूरत नहीं है। जो भी समय उपलब्ध हो उसका उपयोग करो। बाथरूम में अगर दस मिनट का समय हो तो शावर के नीचे बैठो और ध्यान करो। सुबह, दोपहर, चार-पांच बार छोटे-छोटे अंतरालों के लिए--पांच मिनट--ध्यान करो। और तुम देखोगे कि यह सतत पोषण देता है।

अवधि : कुछ मिनटों के लिए

पहला चरण : सांस शिथिल करो।

श्वास को शिथिल करो। और कुछ नहीं। पूरे शरीर को शिथिल करने की जरूरत नहीं है। रेलगाड़ी में या हवाई जहाज में, या कार में, कोई नहीं जानेगा कि तुम कुछ कर रहे हो। सिर्फ सांस की प्रक्रिया को धीमा करो ऐसे ही जैसे वह स्वाभाविक रूप से होती है।

दूसरा चरण : सांस को देखो।

फिर आंखें बंद करो और सांस को आते-जाते देखो। सिर्फ रिलैक्स रहो और सांस को देखो। उस देखने में सब कुछ शामिल करो--कार की आवाज है, कोई हर्ज नहीं। उसे स्वीकार करो। यातायात गुजर रही है, वह भी ठीक है, जिंदगी का हिस्सा है। तुम्हारे बगल में कोई यात्री खर्राटे ले रहा है, उसे स्वीकार करो। कुछ भी अस्वीकार नहीं है। तुम्हें अपनी चेतना को संकीर्ण नहीं करना है।

एकाग्रता तुम्हारी चेतना को संकीर्ण करती है। इसलिए तुम एक ही बिंदु पर ध्यान देते हो। लेकिन बाकी सब प्रतिस्पर्धा बनता है। तुम बाकी चीजों से लड़ रहे हो क्योंकि तुम डरते हो कि यह बिंदु खो जाएगा। तुम्हारा ध्यान बंट जाएगा और उससे विक्षेप होगा।

इसे चौबीस घंटे करना जरूरी नहीं है। बस ध्यान का एक कप काफी है। पूरी नदी को पी जाने की जरूरत नहीं है। जो सरल है, वह सही है। उसे जितना स्वाभाविक बना सको, बनाओ। और उसके पीछे मत पड़ जाओ, जब तुम्हें समय मिले, करो। उसकी आदत मत डालो क्योंकि सभी आदतें मन की होती हैं। और असली आदमी की कोई आदतें नहीं होतीं।

-ओशो, नथिंग टु लूज बट युअर हैड-5

28 अनापानसतीयोग एवं अहं-विसर्जन

ध्यान के संबंध में दो-तीन बातें समझ लें और फिर हम ध्यान का प्रयोग करें।

पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि ध्यान का श्वास से बहुत गहरा संबंध है। साधारणतः देखा होगा, क्रोध में श्वास एक प्रकार से चलती है, शांति में दूसरे प्रकार से चलती है। कामवासना मन को पकड़ ले, तो श्वास की गति तत्काल बदल जाती है। और कभी अगर श्वास बहुत शांत, धीमी, गहरी चलती हो, तो मन बहुत अदभुत प्रकार के आनंद को अनुभव करता है।

मन की सारी दशाएं श्वास से गहरे में संबंधित हैं। इसलिए पहले दस मिनट के लिए श्वास पर थोड़ा सा प्रयोग करेंगे। श्वास इन दस मिनटों में गहरी लेनी है, जितनी आप ले सकें, बिना दबाव और जोर के, कोई परेशानी और तकलीफ न हो; और उतनी ही गहरी वापस छोड़नी है। हमारे फेफड़ों में अगर बहुत कार्बन डाइआक्साइड भरा हो, तो चित्त का शांत होना कठिन हो जाता है। अगर हमारे प्राणों में बहुत आक्सीजन चला जाए- खून में, श्वास में, सब तरफ प्राण-वायु भर जाए तो ध्यान में जाना बहुत आसान हो जाता है।

तो सबसे पहली बात तो दस मिनट गहरे श्वास का प्रयोग करना है। इस प्रयोग में सारा ध्यान श्वास पर ही रखना है। श्वास भीतर गई, तो हमें जानते हुए कि श्वास भीतर जा रही है, ध्यान को भीतर ले जाना है। श्वास बाहर गई, तो जानना है कि श्वास बाहर जा रही है, उसके साथ ही ध्यान को बाहर ले जाना है। ध्यान श्वास के झूले पर झूलने लगे। श्वास भीतर जाए तो हमारा ध्यान भीतर जाए; श्वास बाहर जाए

तो हमारा ध्यान बाहर जाए। दस मिनट के लिए एक ही काम है कि हम श्वास को जानें कि श्वास कहां है- भीतर गई तो हम भीतर चले जाएं; बाहर गई तो हम बाहर चले जाएं। श्वास के साथ ही हमारे चित्त की डोर बंध जाए। बस श्वास ही रह जाए, और सब कुछ मिट जाए। दस मिनट गहरी श्वास लेनी है और श्वास के साथ ही बाहर-भीतर जाना है। आंख हम इन दस मिनटों में बंद रखेंगे, ताकि और कुछ दिखाई न पड़े।

बैठने में दो-तीन बातें ख्याल ले लें।

एक तो कोई किसी को छूता हुआ न बैठे, कोई भी किसी को जरा भी स्पर्श न करे। तो थोड़ा-थोड़ा हट जाएं। कोई भी किसी को स्पर्श करता हुआ न हो। और यहां तो जगह बहुत है, इसलिए बिल्कुल फैल कर बैठ सकते हैं। दूसरे का स्पर्श दूसरे को भूलने नहीं देता। दूसरे की मौजूदगी ख्याल में बनी रहती है। और ध्यान में जरूरी है कि सब भूल जाए, हम अकेले रह जाएं।

दूसरी बात, शरीर को सीधा रख कर बैठें। अकड़ाने की जरूरत नहीं है, आराम से जितना सीधा हो सके। रीढ़ सीधी हो, जमीन से नब्बे का कोण बनाती हो, इतना भर ख्याल कर लें। वह भी पहले दस मिनट के प्रयोग के लिए। फिर आंख बंद कर लें। और आंख भी बंद करने का मतलब है आंख पर भी जोर न डालें, आहिस्ते से पलक बंद हो जाने दें।

आंख बंद कर लें। शरीर को सीधा रखें। आंख बंद कर लें। फिर ले जाएं, फिर छोड़ दें। रोकना नहीं है; ले जाना है, छोड़ देना है। और पूरे दस मिनट के बाद मैं कहूंगा, तब आप आंख खोलेंगे, तब तक श्वास पर ही ध्यान रखना है। श्वास भीतर गई, तो हम जानते हुए भीतर जाएं; श्वास बाहर गई, तो हम जानते हुए बाहर जाएं। ध्यान का मतलब यह है कि श्वास की जो गति है भीतर और बाहर, वह हमसे चूक न पाए, हम उसके साथ ही बाहर-भीतर डोलते रहें।

शुरू करें!

आंख बंद कर लें। गहरी श्वास लें। बस श्वास ही रह जाएगी दस मिनट के लिए, और सब बंद हो जाएगा। गहरी श्वास भीतर ले जाएं, पूरे फेफड़े भर लें, फिर बाहर निकालें; भीतर ले जाएं, बाहर निकालें। दस मिनट में मन बहुत शुद्ध और शांत हो जाएगा। फिर हम दूसरा ध्यान का प्रयोग करेंगे। दस मिनट के लिए यह प्राथमिक काम करें। अब मैं चुप हो जाता हूं, दस मिनट बाद आपको सूचना करूंगा, तब तक आंख नहीं खोलनी है, श्वास गहरी लेनी है और ध्यान श्वास पर रखना है।

(दस मिनट तक श्वास का ध्यान-प्रयोग जारी रहता है, दस मिनट के बाद ओशो दूसरे प्रयोग के लिए सुझाव देते हैं।)

दूसरा प्रयोगः अलग-अलग समझा रहा हूं आपको ताकि ख्याल में आ जाए.. दूसरा प्रयोग है : सर्व-स्वीकार का।

अभी हम बैठे थे, श्वास ले रहे हैं, श्वास पर ध्यान कर रहे हैं; पक्षी आवाज कर रहे हैं, कोई बच्चा चिल्लाएगा, सड़क से कोई ट्रक निकलेगा; ये सारी आवाजें हमारे चारों तरफ हो रही हैं। साधारणतः ध्यान करने वाले लोग, प्रार्थना-पूजा करने वाले लोग अपने चारों तरफ के जगत से एक दुश्मनी ले लेते हैं। अगर घर में एक आदमी ध्यान करने लगे, तो वह ध्यान के पहले जितना अशांत था, उससे ज्यादा ध्यान के बाद दिखाई पड़ेगा। कहीं घर में बर्तन गिर जाएगा, कोई बच्चा रोने लगेगा, तो उसका क्रोध और बढ़ जाएगा। उसे लगेगा कि डिस्टर्बेंस हो रहा है, बाधा पड़ रही है।

मेरी दृष्टि में, ध्यान ऐसी प्रक्रिया है जो समस्त बाधाओं को स्वीकार कर लेती है, किसी बाधा को बाधा नहीं मानती। और जब तक हम ऐसी ध्यान की प्रक्रिया न सीख सकें जिसमें हम बाधाओं को भी सीढ़ियों की तरह प्रयोग कर लें, तब तक ध्यान में जाना असंभव है। क्योंकि बाधाएं तो चारों तरफ हैं। रास्ते से टक निकलेगा, पक्षी आवाज करेंगे, उन्हें कोई प्रयोजन नहीं कि आप ध्यान करने बैठे हैं, कि आपके ध्यान में बाधा न पड़ जाए। और अगर आपने ऐसा समझा कि बाधा पड़ रही है, तो बाधा पड़ जाएगी।

बाधा बाधाओं के कारण नहीं, हमारी इस भाव-दशा के कारण होती है कि बाधा पड़ रही है। अगर यह भाव-दशा छोड़ दी जाए और हम स्वीकार कर लें कि जो भी हो रहा है, ठीक है, हम राजी हैं। पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम राजी हैं। तो पक्षियों की आवाज आपकी शांति को गहरा देगी, कम नहीं करेगी। रास्ते से टक निकल रहा है, हम राजी हैं। कोई बच्चा रो रहा है, हम राजी हैं। क्योंकि आज तो आप बगीचे में आकर बैठ गए हैं, अगर प्रयोग करना चाहेंगे तो घर में ही करेंगे, सड़क चलेगी, घर में आवाज होगी, बात होगी, शोर होगा, और अगर यह दृष्टि रही कि यह सब बाधा बन रही है, तो ध्यान असंभव हो जाएगा।

तो दूसरा दस मिनट के लिए हम प्रयोग करेंगे सर्व-स्वीकार का। जो भी हो रहा है, मैं उससे राजी हूं, मेरा कोई विरोध नहीं है। पक्षी आवाज कर रहे हैं, मैं राजी हूं। और जब आप राजी होकर पक्षी की आवाज सुनेंगे... क्योंकि फिर सुनने के सिवाय कोई उपाय न रहा... जब शांति से, आनंद से, स्वीकार से पक्षी की आवाज सुनेंगे, तो आप पाएंगे कि पक्षी की आवाज आपके भीतर गूंजती है, चली जाती है, आप एक खाली घर की तरह रह गए, वह आवाज कोई बाधा नहीं डालती, बल्कि उस आवाज के बाद आप और शांत हो गए जितना कि आवाज के पहले थे। जैसा कि कभी रात रास्ते पर चलते हों, अंधेरी रात हो और कार निकल जाए, तो कार के प्रकाश के गुजर जाने के बाद रास्ता और अंधेरा मालूम पड़ने लगता है। ठीक ऐसे ही आवाज गुजरेगी, अगर हमने उसका विरोध न किया, तो और घनी शांति पीछे से लौट आती है।

तो दस मिनट हम सर्व-स्वीकार का प्रयोग करेंगे। क्योंकि बिना सर्व-स्वीकार के प्रयोग के ध्यान में जाना असंभव है। न तो आप हिमालय पर भाग कर जा सकते हैं... और वहां भी भाग कर चले जाएं, तो वहां भी कुछ न कुछ हो रहा है। आदमी न बोलेंगे, पक्षी बोलेंगे; सड़क पर कोई न गुजरेगा, तो वृक्षों में हवाएं बहेंगी और आवाज होगी। सारे जगत में जीवन है, जीवन की आवाज है, उससे भागा नहीं जा सकता, उसे स्वीकार कर लेना पड़े।

और फिर जब सभी तरफ परमात्मा है, तो सभी आवाजें उसकी हैं। विरोध उचित भी नहीं है। एक पक्षी ही चिल्ला रहा है, तो वह भी परमात्मा ही चिल्ला रहा है। और अगर वृक्ष में हवाएं आती हैं, सूखे पत्ते उड़ते हैं, वे भी परमात्मा के हैं। सब परमात्मा का है। और जब इस सबके साथ हमें एक हो जाना है, तो विरोध करके हम एक न हो पाएंगे। अ-विरोध, नॉन-रेसिस्टेंस दूसरा सूत्र है।

तो हम दस मिनट के लिए फिर बैठें। गहरी श्वास लेंगे, श्वास पर ध्यान रखेंगे, और साथ ही दूसरा प्रयोग करेंगे कि जो भी हो रहा है उससे मैं राजी हूं, मैं स्वीकार करता हूं, मेरा कोई विरोध नहीं है। और जैसे ही यह भाव भीतर घना होगा कि मैं राजी हूं, मैं स्वीकार करता हूं, वैसे ही मन गहरी शांति में उतरने लगेगा। पुनः आंख बंद कर लें। गहरी श्वास, श्वास पर ध्यान और चारों ओर के जीवन की स्वीकृति, विरोध नहीं। मन को गहरी से गहरी शांति के रास्ते पर अपने आप गति मिलनी शुरू हो जाती है। किसी भी चीज का अस्वीकार नहीं है, विरोध नहीं है। विरोध से ही बाधा बन जाती है।

(दस मिनट तक सर्व-स्वीकार का ध्यान-प्रयोग जारी रहता है, दस मिनट के बाद ओशो तीसरे प्रयोग के लिए सुझाव देते हैं।)

और तीसरी बात, मनुष्य के और परमात्मा के बीच में जो सबसे बड़ी दीवाल है, वह दीवाल परमात्मा की तरफ से नहीं, मनुष्य की ही तरफ से है। और वह दीवाल है मनुष्य का यह ख्याल कि मैं हूं। यह ख्याल जितना मजबूत है, यह अहंकार, यह ईगो कि मैं हूं, जितना मजबूत है, उतनी ही बड़ी दीवाल हमारे और उसके बीच खड़ी हो जाती है। ध्यान की पूरी गहराई में 'मैं' का मिट जाना जरूरी है, अन्यथा दीवाल नहीं गिरेगी, और उससे मिलना भी नहीं हो सकेगा।

तो तीसरा सूत्र 'मैं' को विसर्जन कर देने का है।

तीसरे सूत्र में पहले दोनों सूत्रों का प्रयोग जारी रहेगा और तीसरा सूत्र भी जुड़ जाएगा। श्वास हम गहरी लेंगे। सब स्वीकार का भाव रखेंगे कि जो भी हो रहा है, उससे मैं राजी हूं। कहीं कोई मन में विरोध लेने की जरूरत नहीं है। धूप तेज है तो तेज है, और मैं राजी हूं, जो भी हो रहा है। और ध्यान श्वास पर ही जारी रहेगा। और तीसरी बात उसमें जोड़ देनी है, उसमें यह भाव जोड़ देना है कि मैं नहीं हूं, मैं मिट गया हूं। जैसे बूंद पानी में गिर जाए सागर में और खो जाए, ऐसा ही मैं खो गया हूं। जैसे-जैसे यह भाव गहरा होगा कि मैं खो गया, मैं मिट गया, मैं समाप्त हो गया, वैसे-वैसे ही वह है, इसका भाव अपने आप प्रकट होने लगेगा। यहां मैं मिटूंगा, वहां उसका होना शुरू हो जाएगा। इस तरफ मैं मिटूंगा, उस तरफ वह होना शुरू हो जाएगा। बूंद गिरती है सागर में, इधर बूंद मिटी नहीं कि उधर सागर हुआ नहीं, बूंद मिटी और सागर हुई।

मनुष्य मिट जाए, तो परमात्मा इसी क्षण है। और मिटने के लिए हिम्मत नहीं हमारी। अपने को सम्हाल कर रखते हैं कि कहीं खो न जाएं, कहीं मिट न जाएं। शायद जरूरी भी है जिंदगी में। लेकिन घड़ी भर को चौबीस घंटे में अगर मिट जाएं, तो पता चलेगा कि तेईस घंटे होकर जो नहीं मिला, वह एक घंटे न होकर मिल गया। तेईस घंटे जो कोशिश कर-कर के सुख न मिला, शांति न मिली, वह एक घंटा मिट गए और सब पा लिया।

तीसरा प्रयोग, दस मिनट के लिए। और फिर इन तीनों प्रयोगों को साथ, सुबह जब सोकर उठें, तब एक आधा घंटे के लिए करें, और रात जब सोने लगें बिस्तर पर तो बिस्तर पर ही लेट कर करें और करते-करते ही सो जाएं।

अगर एक घंटा चौबीस घंटे में से इस बात के लिए दिया जा सके, तो दो-तीन महीने के भीतर ही आप पाएंगे कि आपके भीतर से कोई नये आदमी का जन्म शुरू हो गया। कुछ नया ही होना शुरू हो गया, जिसका हमें पता भी नहीं था।

लेकिन हम इतने कमजोर लोग हैं कि दो-तीन महीने भी घंटा भर परमात्मा को देना संभव नहीं हो पाता। एक-दो दिन करेंगे और सोचेंगे कि पता नहीं कुछ होगा कि नहीं होगा।

तीन महीने एक बात ख्याल रख लें कि कुछ न भी होगा, तो कुछ खो नहीं जाएगा। आदमी कुआं खोदता है, तो पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ लगते हैं। सोचे कि कंकड़-पत्थर ही हैं, छोड़ो, दूसरी जगह खोदें। वहां भी खोदता है, वहां भी कंकड़-पत्थर ही हाथ लगते हैं। पहले तो दस-बीस फीट, पचास फीट कंकड़-पत्थर ही खोदना पड़ते हैं, तब कहीं जल-स्रोत आते हैं। यहां जब हम मन की खुदाई पर उतरते हैं... और ध्यान यानी मन की खुदाई, मन का कुआं बनाना... तो भी कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं पहले। लेकिन अगर कोई लगा ही रहे, लगा ही रहे, तो जल-स्रोत भी आ जाता है। और ज्यादा देर नहीं है प्रतीक्षा करने की। लेकिन हमारी थोड़ी प्रतीक्षा करने की भी क्षमता नहीं रह गई है।

तो तीसरे प्रयोग को करें। तीसरा प्रयोग है : 'मैं नहीं हूं' इस भाव में डूब जाना है।

फिर से पुनः आंख बंद कर लें। गहरी श्वास लेना शुरू करें। श्वास भीतर जाए, तो ध्यान भीतर जाए; श्वास बाहर जाए, तो ध्यान बाहर जाए। देखते रहें- यह श्वास भीतर गई, यह श्वास बाहर लौटी; यह फिर भीतर गई, यह फिर बाहर लौटी... श्वास को देखते रहें। श्वास अनदेखी न रहे, श्वास की स्मृति बनी रहे कि यह श्वास भीतर जा रही है, यह श्वास बाहर जाने लगी। श्वास पर ही सारा ध्यान हो और गहरी

श्वास हो। फिर सब स्वीकार का भाव रहे... जो भी है, स्वीकार है; जो भी है, स्वीकार है। और अब तीसरे प्रयोग में डूब जाएं। एक भाव करें, जैसे बूंद सागर में गिर जाती है, ऐसे ही मैं भी गिर गया अनंत के सागर में, मिट गया। मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं...!

(दस मिनट तक अहंकार-विसर्जन का ध्यान-प्रयोग जारी रहता है, दस मिनट के बाद ओशो पुनः बोलना शुरू करते हैं।)

ध्यान के पहले चरण में दस मिनट गहरी श्वास लेना है और श्वास को ध्यानपूर्वक लेना है। इस संबंध में एक-दो बातें और ख्याल में ले लें।

दिन के किसी भी समय में क्रोध आ जाए, मन अशांत हो जाए, चिंतित हो जाए, तो इस प्रयोग को एक मिनट के लिए करके देखें। जब भी मन क्रोधित हो, अशांत हो, चिंतित हो, गहरी श्वास लें और श्वास पर ध्यान करें। एक मिनट से ज्यादा क्रोध, चिंता या अशांति टिकनी असंभव हो जाएगी।

जमीन पर जापान शायद अकेला देश है, जहां अधिकतम लोग प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ते हैं। इस संबंध में खोज-बीन चलती थी कि वहां के लोगों की प्रसन्नता का कारण क्या है? तो बहुत अजीब बात पता चली और वह यह कि जापान में छोटे-छोटे बच्चों को मां-बाप एक बात जरूर सिखाते हैं कि जब भी क्रोध हो, मन अशांत हो, चिंतित हो, तो गहरी श्वास लो और श्वास पर ध्यान करो। इससे उनके पूरे व्यक्तित्व में बुनियादी अंतर हुआ है।

तो इसे कभी भी, दिन में किसी भी क्षण में अशांति मालूम पड़े, क्रोध मालूम पड़े, चिंता मालूम पड़े, तो एक मिनट के लिए प्रयोग करके देखें। गहरी श्वास लें और श्वास पर ध्यान करें। और जब ध्यान के लिए बैठें, तब तो अनिवार्य रूप से दस मिनट के लिए पहले गहरी श्वास लेकर। अगर इस प्रयोग को ही एक घंटे पूरा किया जाए, तो अलग से और कुछ करने की जरूरत भी नहीं है।

बुद्ध की ध्यान की प्रक्रिया का नाम है : अनापानसतीयोग। बुद्ध अपने भिक्षुओं को एक ही बात सिखाते थे, और वह यह कि तुम अपनी श्वास के आने-जाने की स्मृति रखो। अनापानसतीयोग का मतलब है : श्वास का आना-जाना और उसकी स्मृति। जानते हुए कि श्वास भीतर आई, जानते हुए कि श्वास बाहर गई। अगर कोई व्यक्ति जितना ज्यादा श्वास पर ध्यान रख सके... रास्ते पर चलते हुए, बस में बैठे हुए, खाना खाते हुए, रास्ते पर चलते हुए... उतना ही उसका मन गहरी से गहरी शांति की पर्तों में उतरता चला जाता है।

अगर इस प्रयोग को ही एक घंटा रोज किया जा सके, तो तीन महीने में आप एक रूपांतरण देखेंगे। और कल्पना भी न कर पाएंगे कि इतना छोटा सा प्रयोग इतने बड़े परिणाम कैसे ला सकता है!

लाने के कारण हैं। जैसे ही हम गहरी श्वास लेते हैं और श्वास पर ध्यान करते हैं, तो श्वास हमारी आत्मा और शरीर को जोड़ने वाला सेतु है, ब्रिज है। उसी के द्वारा आत्मा और शरीर जुड़े हुए हैं। जब हम गहरी श्वास लेते हैं, तो शरीर और आत्मा के बीच का फासला बड़ा हो जाता है। और जब हम श्वास पर ध्यान करते हैं, तो शरीर धीरे-धीरे बाहर अलग पड़ा रह जाता है, आत्मा अलग हो जाती है और ध्यान बीच के अंतराल पर हो जाता है।

यह अगर एक घंटा रोज तीन महीने तक सिर्फ इतना ही प्रयोग कर सकें, तो आपका शरीर आपसे अलग है, इसकी स्पष्ट प्रतीति हो जाएगी, यह किसी शास्त्र में पढ़ने जाना नहीं पड़ेगा। न केवल यह, बल्कि जितने लोग हम यहां बैठे हैं, अगर इतने लोग इस प्रयोग को कर सकें, तो कम से कम तीस परसेंट लोगों को तो किसी न किसी दिन यह भी अनुभव हो सकता है कि शरीर अलग पड़ा है, मैं अलग

खड़ा हूं, और अपने ही पड़े हुए शरीर को देख रहा हूं। शरीर के बाहर होने का अनुभव भी हो सकता है। और एक बार भी यह अनुभव हो जाए, तो मृत्यु समाप्त हो गई। क्योंकि तब हम जानते हैं कि शरीर ही मरेगा, मेरे मरने का अब कोई कारण नहीं है। और जिस व्यक्ति के जीवन से मृत्यु का भय चला जाए, उस व्यक्ति के जीवन से सभी भय चले जाते हैं। क्योंकि मूल भय मृत्यु है। और जिस व्यक्ति को ऐसा दिखाई पड़ जाए कि मैं शरीर से अलग हूं, उसके जीवन में वह द्वार खुल जाता है जो प्रभु का द्वार है। लेकिन ऐसे दस मिनट शुरू में इसे करें।

आने वाले तीन दिनों में प्रयोग को हम समझेंगे। यह सुबह की बैठक इसीलिए है कि प्रयोग आपके पूरी तरह ख्याल में आ जाए। ...

एक घंटा तीन महीने के लिए ध्यान के लिए दे दें। फिर तीन महीने के बाद देना नहीं पड़ेगा ध्यान के लिए घंटा, ध्यान अपने आप ले लेगा। तीन महीने तक आपको देना पड़ेगा, तीन महीने के बाद आपकी कोई जरूरत न रहेगी। वह जो आनंद की झलक आएगी, वह जो शांति की किरण आएगी, वह जो परमात्मा का स्पर्श मालूम पड़ना होगा शुरू, वह अपने आप बुला लेगा, अपने आप पुकार लेगा। मन का नियम है कि जहां आनंद है, मन उस तरफ अपने आप बहा चला जाता है। एक बार हम रास्ता भर पकड़ लें आनंद का, तो जैसे नदी सागर की तरफ भाग रही है, ऐसा मन आनंद की तरफ भागने लगता है। और जहां पूर्ण आनंद है, वहीं परमात्मा का निवास भी है।

कल सुबह फिर हम सात बजे यहां बैठेंगे। तो घर से स्नान करके आएं। अगर कोई नये मित्र आपके साथ आते हों, तो उन्हें भी बता दें कि वे स्नान करके आएं, चुपचाप आएं। घर से ही चुप होना शुरू हो जाएं और यहां आकर चुपचाप बैठ जाएं, यहां कोई शब्द का प्रयोग न करें। जितनी देर में मैं आऊंगा, दस-पांच मिनट पहले आप आ गए हैं, तो गहरी श्वास लेते हुए, कहीं भी कोने में बैठे हुए, जो मैंने कहा है वह करते रहें। मैं फिर आऊंगा, तो फिर हम सामूहिक बैठ कर प्रयोग करेंगे।

एकाध, दो मित्र ऐसे ही देखने आ गए हैं कि दूसरे क्या कर रहे हैं। उन्हें कल नहीं आना है। क्योंकि जिसे प्रयोग नहीं करना है उसे नहीं आना है। वह सबके लिए उपद्रव का कारण बनता है। उसे पता नहीं होता। और दूसरे को देख कर कुछ भी नहीं समझा जा सकता। क्या देख कर समझेंगे दूसरे को? अगर कोई देखे, तो उसे देख कर क्या समझेगा? वह आंख बंद किए बैठा है, उसे देख कर आप क्या समझेंगे?

कुछ भी समझना है, तो अपनी ही आंख बंद करके भीतर देखना पड़ेगा, दूसरे को देखने से कुछ समझ में आने वाला नहीं है।

तो तमाशबीन की तरह कोई भी न आए। एक-दो सज्जन आ गए हैं, वे कल से कष्ट न करें। और अगर आते हों कल, तो अपनी ही फिकर करें। दूसरा क्या कर रहा है, इसकी चिंता में किसी को पड़ने की जरूरत नहीं।

सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई।

इस संबंध में कोई भी प्रश्न हों, तो कल लिखित मुझे दे देंगे, तो ध्यान के पहले उनकी बात कर लूंगा। और अगर किसी को व्यक्तिगत कुछ इस संबंध में पूछना हो, तो दोपहर को तीन से चार कोई भी आकर पूछ ले सकता है।

सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई।

बातचीत हम नहीं करेंगे, चुपचाप यहां से विदा हो जाएंगे।

-साक्षी की साधना-2

29 सावधानियाँः महत्त्वपूर्ण विधि, खतरनाक भी!

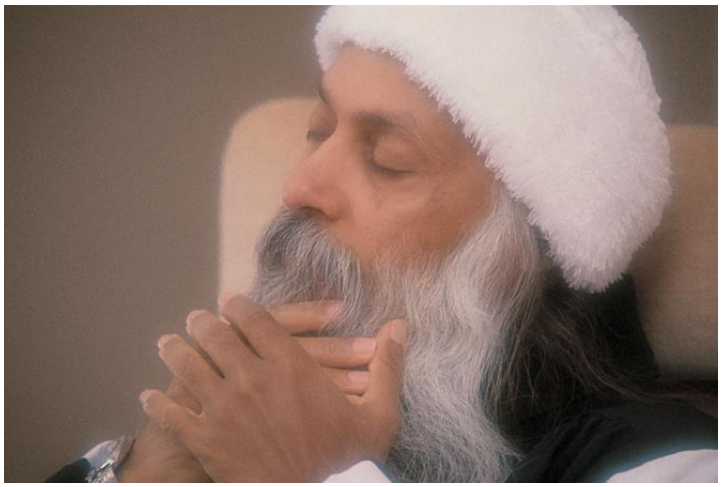

गुरु का और कुछ अर्थ नहीं होता--जिसके जीवन में परमात्मा घट गया है। गुरु साक्षी है इस बात का कि तुम्हारे जीवन में भी घट सकता है। और कुंजी बहुत कठिन नहीं है। एक बार हाथ में लग जाए तो बड़ी सरल है। कुंजी न हो तो ताले खोलना बड़ा कठिन है और कुंजी हो तो ताला खोलने से सरल और क्या बात है? कुंजी डाली कि ताला खुला! और कुंजी न हो हाथ तो तुम तालों को ठोकते रहो, पीटते रहो, हथौड़े मारते रहो--खतरा यही है कि कहीं ताला इतना न बिगाड़ लेना कि जिस दिन कुंजी भी हाथ लगे कुंजी भी काम न करे।

अकसर ऐसा हो जाता है, लोग ताले को बिना कुंजी के खोलने की चेष्टा में इतना बर्बाद कर लेते हैं कि कुंजी मिल भी जाए तो ताला नहीं खुलता। इसके पहले कि तुम ताला खोलने लगो, उस आदमी के पास बैठ जाना जिसके द्वार खुल गए हैं। नहीं तो खतरा है।

मेरे पास बहुत-से लोग आ जाते हैं, जो किताबों में पढ़-पढ़ कर कुछ कर लेते हैं। उससे और उलझन खड़ी हो जाती है। किताबों से कुंजी नहीं मिल सकती। कुंजी जीवंत दान है। शास्त्रों से मिलती है, शास्त्र से नहीं मिलती। गुरु से मिलती है, गुरुवाणी से नहीं मिलती। गुरुवाणी तो नक्शा है। मैं तुम्हें दे सकता हूं, लेकिन मेरी किताबों से नहीं मिलेगी। हालांकि मेरी किताबों में उसी की चर्चा है, फिर भी तुम्हें उससे नहीं मिलेगी। कुंजी की चर्चा है, उससे कुंजी कैसे मिलेगी? कुंजी का वर्णन है, उससे कुंजी कैसे मिलेगी? कुंजी तो जिसके पास हो, उसके पास ही बैठकर धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक सीखनी पड़ेगी, साधनी पड़ेगी।

लोग अहंकार-वश किताबों से उपाय खोजते हैं। किताब से एक फायदा है, किसी को पता नहीं चलता कि तुम किसी से सीखने गए। किताब अपने घर में है, पढ़ ली, करने लगे। अकसर लोग उलझकर आ जाते हैं।

अभी चार दिन पहले कोई विपस्सना करता हुआ आया! तीन महीने विपस्सना की है, नींद खो गयी। अब परेशान है। और विपस्सना करने से जिसकी नींद चली जाए, उस पर कोई ट्रेंकुलाइजर काम नहीं कर सकता फिर। सुस्त कर देगा, लेकिन नींद नहीं ला सकता। और या फिर इतनी मात्रा में लेना पड़ेगा कि वह दूसरे दिन भी उठ नहीं पाएगा। अब वे मुश्किल में पड़ गए हैं। उनको देखकर ही मुझे लगा कि विपस्सना का परिणाम होना चाहिए। मैंने उनसे पूछा, विपस्सना तो नहीं कर रहे हो? उन्होंने कहा : हां, तीन महीने से उसी में तो लगा हुआ हूं। तो मैंने कहा : यह उसका फल है। किससे सीखी विपस्सना?

क्यों शास्ता पर जोर दिया जाता है? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुंजी थोड़ी-सी भिन्न करनी होती है। कोई व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं। सारे व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं। किताब में तो एक सामान्य सिद्धांत होता है। सामान्य सिद्धांत औसत की भांति होते हैं। जैसे तुम किसी से पूछो कि पूना में आदमी की औसत ऊंचाई क्या है? तो औसत ऊंचाई का मतलब होता है : जितने लोग पूना में हैं सबकी ऊंचाई नापो, फिर उनकी संख्या का भाग दे दो। फिर औसत ऊंचाई आ जाएगी! समझ लो चार फीट साढ़े तीन इंच। अब अगर तुम चार फीट साढ़े तीन इंच के आदमी को खोजने निकलो, तुमको शायद ही मिले। और तुम बड़े हैरान होओगे कि यह तो औसत ऊंचाई है। अधिकतम लोग इसी ऊंचाई के होने चाहिए। कोई पांच फीट दस इंच है, कोई पांच फीट नौ इंच है। कोई छोटा बच्चा तीन फीट है, कोई और छोटा बच्चा एक फीट है, सब तरह के लोग मिल जाएंगे। चार फीट साढ़े तीन इंच का आदमी शायद मिले। शायद ही, क्योंकि वह तो सिर्फ औसत ऊंचाई है। गणित का काम है। अस्तित्व में उसकी खोज करना व्यर्थ है।

ऐसे ही सारे सिद्धांत औसत हैं। सूत्र दे दिए गए हैं, लेकिन प्रत्येक का ताला अलग है। और गुरु के पास कुंजी ढालनी होती है, जो उसके ताले पर काम आएगी। हर किसी की कुंजी तुम्हारे ताले पर काम नहीं आएगी।

अब अगर कोई विपस्सना का प्रयोग करेगा तो विपस्सना का अर्थ होता है : श्वास पर ध्यान। साधारण प्राकृतिक रूप से श्वास पर ध्यान नहीं होता। यह बड़ी अप्राकृतिक प्रक्रिया है। श्वास चलती रहती है, ध्यान कौन देता है! जब तक कि कोई अड़चन न आ जाए, श्वास में कोई तकलीफ हो, हृदय का दौरा पड़ जाए, खांसी आ जाए, तो श्वास पर ध्यान जाता है, सर्दी-जुकाम हो जाए तो श्वास पर ध्यान जाता है। स्वस्थ तुम रहो तो श्वास का पता ही नहीं चलता। पता चलना भी नहीं चाहिए! श्वास तो चौबीस घंटे चल रही है, इसका पता चलता रहे तो फिर और चीजों का पता कैसे चलेगा? इसमें उलझे रहो तो झंझट हो जाएगी।

विपस्सना का अर्थ होता है श्वास पर ध्यान। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रयोग है और खतरनाक भी। अगर ठीक निरीक्षण में न किया जाए तो श्वास पर ध्यान करने का परिणाम यह होगा कि तुम रात सो नहीं सकोगे। श्वास तो रात भी चलती रहती है। अगर तुमने दिन-भर श्वास पर ध्यान किया, श्वास को देखते रहे, रात भी तुम बंध जाओगे, श्वास को देखते रहोगे। और जब तुम श्वास को देखते रहोगे, नींद नहीं आएगी। और नींद नहीं आएगी तो तुम सोचोगे कि चलो विपस्सना ही क्यों न करें, पड़े-पड़े कर क्या रहे हैं?

वही वे सज्जन कर रहे हैं कि अब नींद आ ही नहीं रही तो चलो श्वास को ही देखते रहें। और श्वास को देखने में आनंद भी आएगा, सुख भी मालूम पड़ेगा, शांति भी मालूम पड़ेगी! लेकिन अगर नींद खो गयी तो शरीर के लिए दुःख शुरू हो जाएंगे। जल्दी ही तुम रुग्ण होने लगोगे। मुश्किल में पड़ जाओगे। विक्षिप्त भी हो सकते हो, अगर ज्यादा दिन नींद न आए। और फिर अगर नींद बिल्कुल खो जाए तो तुम पागल हो ही जाओगे। क्योंकि विश्राम चाहिए ही चाहिए।

यह तो सिर्फ सिद्धांत है श्वास को देखना। फिर कितना देखना, यह गुरु तय करेगा। और किस समय देखना, यह भी गुरु तय करेगा। गुरु तय करेगा कि चालीस मिनट देखना, इससे ज्यादा नहीं देखना एक बार में; या साठ मिनट देखना, इससे ज्यादा नहीं देखना एक बार में। साठ मिनट देखने के लिए साठ मिनट उसके बाद छोड़ देना, देखना ही मत। या सुबह देखना या सांझ देखना, कब देखना? यह प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर अलग-अलग होगा। भोजन करने के बाद देखना श्वास कि नहीं देखना, खाली पेट देखना या भरे पेट देखना--यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होगा। अगर तुमने भरे पेट श्वास देखी, तुम्हारी पाचन-क्रिया गड़बड़ हो जाएगी। अगर तुमने जितनी तुम्हारे लिए जरूरत है उससे ज्यादा देखी तो तुम्हारे भीतर होश तो आने लगेगा, लेकिन होश के साथ तनाव आ जाएगा! और अगर तनाव आ गया तो बात गड़बड़ हो गयी! होश तो शांति लाना चाहिए, तनाव नहीं। यह मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं। इसी तरह सारे सिद्धांत हैं। सिद्धांतों का व्यवहारिक अर्थ तो गुरु के पास मिलेगा!

-ज्योति से ज्योति जले-19

अति विपस्सना ध्यान से अनिद्रा संभव

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जिन्होंने परमात्मा के संबंध में बड़ी-बड़ी किताबें लिखी हैं। और जब मैंने उनसे पूछा कि तुमने जाना है? तो वे कंप गए। इधर-उधर झांकने लगे, बगलें झांकने लगे। कहने लगे कि जाना तो नहीं है, मगर शास्त्रों का अध्ययन किया है। सरल है, शास्त्रों का अध्ययन करके और एक शास्त्र निर्मित कर देना कठिन नहीं है, कोई भी कर सकता है। लेकिन शिक्षित हो जाना ज्ञानी हो जाना नहीं है। और विद्वान हो जाना बुद्धिमान हो जाना नहीं है। शास्त्रज्ञ हो जाना द्रष्टा हो जाना नहीं है। फिर इन किताबों को लोग पढ़ते हैं... उनकी किताबें जिन्होंने खुद भी नहीं जाना है। अंधा अंधा ठेलिया, दोऊ कूप पड़ंत! फिर इन किताबों को लोग पढ़ते हैं। और इन किताबों के अनुसार लोग चलना भी शुरू कर देते हैं।

एक युवक को मेरे पास लाया गया श्रीलंका से। उसकी नींद खो गई थी। सब उपाय किए गए, नींद नहीं आती थी। सब दवाएं दी गईं, नींद नहीं आती थी। तीन वर्ष से नींद का कोई पता नहीं था। उसकी हालत तुम समझ सकते हो, कैसी विक्षिप्त! कैसी टूटी-फूटी! इतना उदास, इतना मलिन मैंने कोई व्यक्ति नहीं देखा! इतना हारा, इतना थका, इतना टूटा, इतना मुर्दा! तीन साल से जिसको सोने का विश्राम नहीं मिला। क्षण भर को जिसे सुषुप्ति की छाया नहीं मिली। जो क्षण भर को भी सुषुप्ति के स्रोत में नहीं डूबा और परमात्मा से नहीं जुड़ा। बेहोश ही सही, नींद की बेहोशी में भी जब तुम सुषुप्त हो जाते हो, स्वप्न खो जाते हैं, तो तुम परमात्मा से क्षण भर को जुड़ जाते हो। उसी जोड़ के कारण सुबह तुम अपने को ताजा पाते हो, नया पाते हो। पुनरुज्जीवित हो उठते हो। नवजीवन पाते हो। और जिस रात नींद न आए, एक रात नींद न आए, तो दूसरे दिन हारे-थके! तीन साल लंबा समय है!

मैंने उससे पूछा कि तू बौद्ध भिक्षु है, कहीं विपस्सना ध्यान तो नहीं कर रहा है?

उसने कहा : कर रहा हूं।

किसने तुझे सिखाया?

उसने कहा कि जिसने सिखाया है, विपस्सना ध्यान पर बड़ी किताबें लिखी हैं उन्होंने।

मैंने कहा : यह सवाल नहीं है, उन्होंने विपस्सना ध्यान कभी किया है?

उसने कहा : यह तो मैंने पूछा नहीं।

मैंने कहा : मैं तुझे कहता हूं कि उन्होंने विपस्सना ध्यान कभी नहीं किया होगा। क्योंकि जिस ढंग से तुझे करने को बताया है, वह तो खतरनाक है। उसमें नींद तो समाप्त हो ही जाएगी।

जिस व्यक्ति से विपस्सना ध्यान सीखा इस बौद्ध भिक्षु ने, उन्होंने इसे यह कहा ही नहीं कि रात में विपस्सना ध्यान मत करना, सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच ही ठीक है। रात में अगर विपस्सना ध्यान किया, तो कुछ लोगों की नींद सदा के लिए खो जाएगी, क्योंकि विपस्सना ध्यान जागरण की प्रक्रिया है। और जिससे उस व्यक्ति ने सीखा था विपस्सना ध्यान, उसने कहा था कि जितना बन सके, करो; जितना ज्यादा कर सको, करो; लाभ ही लाभ है।

लोभ में पड़ गया। जिसने यह कहा, उसे भी पता नहीं कि वह क्या कह रहा है! शास्त्रज्ञ होगा, स्वानुभव नहीं है। अब नींद आ नहीं सकती।

कोई दवा की जरूरत न पड़ी! मैंने कहा कि तीन महीने तक विपस्सना ध्यान बिल्कुल बंद कर दो। फिर जब नींद पूरी तरह आने लगे तो विपस्सना ध्यान शुरू करना, लेकिन सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच। और कभी भी तीन-चार घंटे से ज्यादा न हो पाए। बस इतना पर्याप्त है। पर्याप्त से ज्यादा है।

सुस्वादु पौष्टिक भोजन भी अति में नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने कहा है : अति पाप है; मध्य मार्ग है। ध्यान की भी अति नहीं होनी चाहिए। लेकिन यह तो कोई ध्यानी ही कहेगा। नहीं तो पता ही नहीं है कि अति के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं।

दीया तुम्हारा जल सकता है... किसी सदगुरु से! और सदगुरु से अर्थ है... उसने जिसने जाना हो। ज्ञान का संग्रह नहीं, ज्ञान का स्रोत हो जो। सूचना मात्र न हो जिसके पास। शास्त्रों का उद्धरण ही न हो जिसके पास। जो स्वयं गवाह हो। जो साक्षी हो। जो कह सके अधिकार से कि जो मैं कह रहा हूं, मेरा अपना जाना है। उसका संग-साथ पकड़ लेना। उसके रंग में रंग जाना। तो जल्दी ही तुम्हारा हरि अंधों का हाथी न रह जाएगा। तुम्हें अपना अनुभव आना शुरू हो जाएगा। और अनुभव मुक्तिदायी है।

-बिरहिनी मंदिर दियना बार-5

शिव सूत्र नामक ग्रंथ में भगवान शिव कहते हैं : 'गुरु उपाय है।' अर्थात् गुरु से समझकर विधि करना। इस सूत्र को समझाते हुए सदगुरु ओशो श्रीलंका के उपरोक्त साधक का पुनः जिक्र करते हैं-

तीन साल तक जो न सोए, उसकी हालत तुम समझ सकते हो। वह बिल्कुल विक्षिप्त अवस्था है। मैंने उससे पूछा कि... क्योंकि वह किसी डाक्टर ने उससे पूछा ही नहीं। डाक्टरों ने उसकी चिकित्सा शुरू कर दी; जांच-पड़ताल की शरीर की--खून का दबाव, हृदय की स्थिति--सारा सब जांच-पड़ताल करके इलाज शुरू किया। वह उसकी बीमारी नहीं है। वे सज्जन एक ध्यान कर रहे हैं। एक प्राचीन परंपरा है बौद्धों की, विपस्सना; वे विपस्सना ध्यान कर रहे हैं। वह ध्यान उन्होंने शास्त्र से सीधा पढ़ लिया। क्योंकि गुरु तो एक-एक शिष्य को ख्याल में रखेगा। या अगर वह कोई सामूहिक पद्धति विकसित करता है, तो वह समूह को ध्यान में रखेगा। लेकिन शास्त्र तो आपका ध्यान नहीं रख सकते कि कौन पढ़ेगा। कोई भी पढ़ेगा! और शास्त्र हजारों साल तक जीते हैं।

तो बहुत पुरानी विपस्सना की पद्धति है, वह उन्होंने पढ़ ली और उस पर प्रयोग शुरू कर दिया। फिर उसमें उन्हें रस आया; क्योंकि पद्धति बड़ी कीमती है, बुद्ध ने खुद उपयोग किया है। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि जब रस आ जाए तो कहां रुकना; क्योंकि रस भी ज्यादा हो जाए तो जहर हो जाता है। तो रस उन्हें इतना आया कि वे चौबीस घंटे उसे भीतर साधने लगे। जब तुम कोई चीज भीतर चौबीस घंटे साधोगे, नींद खो जाएगी। क्योंकि भीतर अगर इतना प्रयत्न चलाओगे, तो नींद के आने की संभावना नहीं है। फिर उन्होंने वर्षों तक यह प्रयोग किया कि जिन तंतुओं से नींद आती है, वे तंतु टूट गए। तो अब नींद का कोई उपाय नहीं। क्योंकि डाक्टर भी साथ दे सकता है, अगर तंतु मौजूद हों; तो ट्रैंक्वेलाइजर जाकर उन तंतुओं को शिथिल कर देगा और आप सो जाएंगे। लेकिन अगर तंतु ही टूट गए, तो अब डाक्टर भी क्या करेगा!

तो मैंने उनको कहा कि तुम एक साल के लिए सब तरह का ध्यान छोड़ दो। तुमसे जितना आलस्य बन सके, आलस्य करो। ध्यान की बात ही मत करना। शास्त्र मत पढ़ना। सोना, जितना सो सको। लेटना, विश्राम करना; खूब खाओ, खूब पीओ। साल भर के लिए परम संसारी हो जाओ।

उन्होंने कहा, आपसे ऐसी आशा न थी। आप और ऐसे शब्द कह रहे हैं? भ्रष्ट कर रहे हैं आप? मैंने कहा कि तुम अगर भ्रष्ट समझते हो तो तुम समझो। साल भर यह करो, फिर मेरे पास आना।

ठीक तीन महीने बाद वे ठीक हो गए। अब उन्हें नयी पद्धति देनी पड़ी। और पद्धति को भी सोच कर देना जरूरी है कि कितना तुम कर सकोगे। और फिर क्रमश : गति बढ़नी चाहिए। और पूरे चित्त की व्यवस्था का ध्यान रखना जरूरी है।

इसलिए शिव कहते हैं : 'गुरु उपाय है।'

-शिव-सूत्र-4

विपस्सना से सिरदर्द संभव

प्रश्न: ज्योति से ज्योति का मिलन कैसे हो? कृपा कर बताएं कि मुझे कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए?

पूछा है प्रेमा भारती ने।

नाम ही इसलिए दिया हूं तुझे प्रेमा कि प्रेम तेरे लिए मार्ग है। भक्ति तेरा मार्ग है। बुद्ध के मार्ग से तू न जा सकेगी। बुद्ध का मार्ग ध्यान का मार्ग है। बुद्ध के मार्ग से तेरा मेल न बैठेगा। और ऐसी घटना घटी है।

प्रेमा भारती ने यहां आने के पहले सालभर पहले विपस्सना का प्रयोग किया। विपस्सना बौद्धों का ध्यान है। और तबसे उसका सिरदर्द चल रहा है, सिर भारी है, शरीर टूटा-टूटा है, बेचौनी है, परेशानी है; तब से उसकी चेतना प्रगाढ़ होने के बजाय और धुंधली हो गयी और धुआं-धुआं हो गया।

विपस्सना का प्रयोग उनके लिए है जिनके लिए ध्यान का मार्ग ठीक पड़ता है। सभी मार्ग सभी के लिए ठीक नहीं हैं। और मार्ग मूलरूप से दो हैं--प्रेम और ध्यान। इसलिए बहुत सजग होकर प्रयोग करने चाहिए। इसलिए सदगुरु की अत्यंत आवश्यकता है, तुम कैसे तय करोगे?

अब जिस व्यक्ति ने प्रेमा को विपस्सना का प्रयोग करवा दिया, उसको कुछ भी पता नहीं है कि वह क्या कर रहा है। उसे विपस्सना की प्रक्रिया मालूम होगी, लेकिन वह व्यक्ति सदगुरु नहीं है। नहीं तो रोक देता कि विपस्सना करना ही नहीं। विपस्सना करवाना प्रेमा को, उसे आत्मघात की तरफ ढकेलना है। उसकी धारा थी हृदय की। विपस्सना हृदय के बिल्कुल विपरीत है। उसकी धारा थी प्रेम की। विपस्सना प्रेम को सुखा डालती है। और यह सालभर से जो उसे परेशानी हो रही है, वह इसीलिए परेशानी हो रही है कि विपस्सना ने एक दीवार खड़ी कर दी उसके प्रेम के झरने में। और वह उसका सहज स्वभाव था। वही था मार्ग उसके लिए परमात्मा तक पहुंचने का।

तो मैं जब बुद्ध पर बोलता हूं, तब तुम्हें सदा सावधान करता हूं कि ठीक सोच लेना, तुम्हें अगर प्रेम बिल्कुल न जंचता हो, अगर तुम्हें प्रेम में कुछ रस न आता हो और भक्ति में तुम्हारे भीतर कोई भाव न उठता हो और प्रार्थना तुम्हारे लिए बिल्कुल ही व्यर्थ मालूम पड़ती हो, तो बुद्ध के मार्ग पर जाना।

अगर तुम्हें प्रार्थना में आंसू बहते हों, हृदय डोल उठता हो, मगन हो उठता हो, मस्ती छा जाती हो, श्रद्धा सरल हो, तो फिर बुद्ध के मार्ग में मत जाना। फिर नारद का मार्ग है, फिर मीरा-कबीर का मार्ग है, चौतन्य का मार्ग है।

दुनिया में दो ही मार्ग हैं, क्योंकि आदमी के भीतर दो केंद्र हैं--एक हृदय का और एक बुद्धि का। बुद्ध का मार्ग बुद्धि का मार्ग है। बुद्धि को निखारो, खालिस करो; इतना खालिस करो कि विचार की धूल हट जाए, सिर्फ खालिस बुद्धिमत्ता रह जाए, तो तुम बुद्ध हो गए। नारद का मार्ग है--अपने हृदय को निखारो और साफ करो; इतना निखारो, इतना साफ करो कि राग न रह जाए, प्रेम ही बचे; मोह न रह जाए, प्रेम ही बचे। शुद्ध प्रार्थना बचे, अकारण, कोई मांग न हो, कोई वासना न हो।

दोनों का परिणाम एक ही है। विचार न रह जाएं--वासनाएं समाप्त हो जाती हैं; विचार न रह जाएं--राग समाप्त हो जाता है। लेकिन विचार के न रहने पर जो पहला अनुभव होता है ध्यान के पथिक का, वह है शुद्ध चौतन्य का, चित का। प्रेम के पथिक को जो अनुभव होता है पहला, वह है शुद्ध प्रेम का, बेशर्त प्रेम का; सारे अस्तित्व के प्रति प्रेम बहा जाता है, किसी कारण से नहीं, अकारण; जैसे झरने बह रहे सागर की तरफ, ऐसा तुम्हारा हृदय बहता समस्त की तरफ। वासना चली जाती, राग चला जाता, विचार भी चले जाते--प्रेम के गहन क्षण में कैसे विचार!

ध्यान के मार्ग पर पहले ध्यान घटता है, फिर पीछे से प्रेम आता है। और प्रेम के मार्ग पर पहले प्रेम घटता है, पीछे से ध्यान आता है।

प्रेमा को मैंने इसलिए नाम दिया--प्रेमा। उसमें उसको मार्ग का इंगित दिया है। ध्यान की भूल में मत पड़ना। तेरे लिए प्रेम ही ध्यान है। गाओ, गुनगुनाओ, नाचो, डोलो, मस्त बनो; आत्मा की शराब पीओ।

तुम बिछुड़े मिले हजार बार,

इस पार कभी उस पार कभी।

तुम कभी अश्रु बनकर आंखों से टूट पड़े

तुम कभी गीत बनकर सांसों से फूट पड़े

तुम टूटे जुड़े हजार बार,

इस पार कभी उस पार कभी।

तम के पथ पर तुम दीप जला धर गए कभी

किरणों की गलियों में काजल भर गए कभी

तुम जले बुझे प्रिय बार-बार,

इस पार कभी उस पार कभी।

फूलों की टोली में मुस्काते कभी मिले

शूलों की बांहों में अकुलाते कभी मिले

तुम खिले झरे प्रिय बार-बार,

इस पार कभी उस पार कभी।

तुम बनकर स्वप्न थके, सुधि बनकर चले साथ

धड़कन बन जीवनभर तुम बांधे रहे गात

तुम रुके चले प्रिय बार-बार,

इस पार कभी उस पार कभी।

तुम पास रहे तन के तब दूर लगे मन से

जब पास हुए मन के तब दूर लगे तन से

तुम बिछुड़े मिले हजार बार,

इस पार कभी उस पार कभी।

गाओ, गुनगुनाओ, नाचो; मस्ती में डोलो। शराबी का रास्ता तुम्हारा रास्ता है। ऐसा मत सोचना कि प्रेम का रास्ता सरल है और ध्यान का रास्ता कठिन है। ऐसा भी मत सोचना कि ध्यान का रास्ता सरल है और प्रेम का रास्ता कठिन है। जो प्रेम के लिए नहीं बने हैं, उनके लिए प्रेम का रास्ता कठिन है। जो ध्यान के लिए नहीं बने हैं, उनके लिए ध्यान का रास्ता कठिन है। जो ध्यान के लिए बने हैं उनके लिए ध्यान का रास्ता बिल्कुल सुगम है, जो प्रेम के लिए बने हैं उनके लिए प्रेम का रास्ता सुगम है।

तो कसौटी तुम्हें देता हूं--जो सुगम हो, वही मार्ग है। जो सरल हो, वही मार्ग है। कठिन से मत उलझना। कठिन से सावधान। कठिन से बचना। जैसे ही लगे कि कोई चीज बहुत कठिन हो रही है, समझ लेना कि वह तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ रही है। जो अनुकूल पड़ता है, उसमें तो नए-नए पात निकलते हैं, नए-नए फूल ऊगते हैं, सब सुगम होता है। सुगम ही सही है, इजी इज राइट।

और मैं तुम्हें व्यर्थ की झंझटों में नहीं डालना चाहता। हालांकि मन हमेशा झंझट में रस लेता है। मन चाहता है, कठिन को करके दिखा दें, क्योंकि कठिन में अहंकार की तृप्ति होती है; इस सत्य को खूब ध्यान में रखना। कठिन का आकर्षण है, क्योंकि कठिन कहता है--चुनौती, करके दिखा दें।

तो अक्सर ऐसा होता है, लोगों का जो मार्ग नहीं है, उसमें उलझ जाते हैं। जो प्रेम से जाते और सरलता से पहुंच जाते, वे ध्यान में लग जाते हैं। जो ध्यान से जाते और सरलता से पहुंच जाते, वे प्रेम में लग जाते हैं। आदमी का मन बड़ा अजीब है। विक्षिप्त है, उलटा सुझाता है। खोपड़ी, सभी खोपड़ियां उलटी खोपड़ियां हैं। यहां मामला ही उलटा होता है।

इसलिए इससे बड़े सावधान रहना। कठिन में बड़ा आकर्षण मालूम होता है कि चलो दिखा दें करके। और अहंकार को तृप्ति मिलती है, अहंकार मजबूत होता है। और जिस चीज से अहंकार मजबूत होता है, उससे परमात्मा दूर होता है।

प्रेमी को तो पता ही नहीं चलता कि प्रेम में कोई कठिनाई है। ध्यानी को पता चलता है। जब ध्यानी देखता है प्रेमी को, तो वह सोचता है, कितना कठिन मामला! ध्यानी को पता नहीं चलता ध्यान में कोई कठिनाई है, प्रेमी को पता चलता है।

यह छोटी सी कहानी सुनो। प्रेमा पंजाब से है, यह कहानी भी पंजाब की है।

एक फकीर था, वह सड़कों पर चिल्लाता फिरता था--ईश्वर ले लो, नाम ले लो। नाम को तो नानक ने बड़ा मूल्य दिया, नाम को तो ईश्वर का पर्याय कहा। बस नाम ही सब कुछ है। तो वह फकीर चिल्लाता था--ईश्वर ले लो, नाम ले लो। नाम नाम का पंजाब में एक गहना भी होता था, एक आभूषण। इस आभूषण के कारण एक महाशय ने समझा कि वह उस आभूषण को बेचना चाहता है। वे उसके घर का पता लगाकर पहुंचे। उनकी लड़की की शादी होने वाली थी, वह उस आभूषण को खरीदना चाहते थे।

फकीर घर पर नहीं था, उसकी छोटी लड़की थी। इन साहब ने उससे कहा कि मैं नाम खरीदना चाहता हूं, तुम्हारे पिता कहां हैं? लड़की ने कहा, उनकी क्या जरूरत है, आप मूल्य चुकाने को तैयार हों तो मैं ही नाम दे दूंगी। लड़की भीतर गयी और छुरी पर धार रखने लगी। उसने पिता के मुंह से सुन रखा था कि ईश्वर को पाना हो तो खुद का जीवन देना होता है। इससे ही वह छुरी पर धार रख रही थी कि इन साहब को अपना जीवन दान करना पड़ेगा, तो छुरी तैयार कर दूं। इधर साहब को देर लगती देखकर बेचैनी होने लगी, उन्होंने खिड़की से झांककर देखा और कहा, लड़की क्या कर रही है? मैं खड़ा हूं, जल्दी नाम दे दो। उस लड़की ने कहा, ठहरो, अपना सिर भी तो देना होगा। उसके लिए ही इस छुरे पर धार रख रही हूं। यह सुन साहब गुस्से से भर गए। शोरगुल सुन मोहल्ले के लोग भी इकट्ठे हो गए। उन महाशय ने कहा, मैं इन बदमाशों को पुलिस में दूंगा। लड़की मेरी हत्या करना चाहती है।

इसी बीच लड़की का पिता भी आ गया। उसने स्थिति समझी और बोला, पागल लड़की, ईश्वर की इतनी सस्ती कीमत! नाम लेना है तो हजारों जीवन देने होते हैं, एक जीवन देने से क्या चलेगा! नाम लेना हो तो हजारों जीवन खोने पड़ते हैं, एक जीवन खोने से क्या चलेगा! और आप जनाब, एक ही गर्दन देने से घबड़ा गए और पुलिस में जा रहे हैं!

अब जाकर लोगों को समझ में आया कि नाम का क्या अर्थ है! उस फकीर ने अंत में कहा कि ईश्वर इसीलिए ही आज नहीं मिलता, क्योंकि मेरी बच्ची जैसे सस्ते दामों पर उसे बेचने वाले पैदा हो गए हैं।

समझने की कोशिश करना। चारों तरफ इस तरह के लोग हैं, जो तुम्हें बहुत सस्ते दामों पर विधियां दे रहे हैं। उन्हें खुद भी पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं!

अब यह प्रेमा जिनके पास जाकर विपस्सना सीखी, उन्होंने इसे विपस्सना सिखायी, यही काफी प्रमाण है कि उन्हें कुछ भी पता नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि उन्हें विपस्सना की विधि का पता नहीं, टेक्निकल ज्ञान होगा, जरूर होगा; वह जानते होंगे कि क्या करना, कब करना, कैसे करना, लेकिन उन्हें स्वयं का अनुभव नहीं हो सकता। टेक्निकल ज्ञान एक बात है, स्वयं का अनुभव बिल्कुल दूसरी बात है।

तुम ऐसा ही समझो कि एक आदमी ने किताब पढ़ी और किताब में देखा कि कार कैसे ड्राइव करनी होती है--सब पढ़ लिया, एक-एक ब्यौरा पढ़ लिया, लेकिन कभी कार ड्राइव नहीं की। इस आदमी के साथ गाड़ी में मत बैठ जाना अगर यह ड्राइव करने जाए तो! यह... यह पटकेगा कहीं, खतरे में ले जाएगा। इसने किताब में सब ब्यौरा पढ़ लिया है, इससे अगर परीक्षा लो तो यह परीक्षा बिल्कुल दे

सकता है लिखित, एक-एक चीज के ठीक-ठीक उत्तर दे देगा। लेकिन लिखित उत्तर एक बात है, और कार चलाना बिल्कुल दूसरी बात है।

वर्ष भर से प्रेमा परेशान है। करीब-करीब विक्षिप्तता जैसी हालत पैदा हो गयी है। हो ही जाएगी; सस्ते दामों पर विधियां देने वाले लोग उपलब्ध हैं! जिन्हें कुछ पता नहीं है।

अब इस लड़की को कुछ पता नहीं था कि मामला क्या है? क्या नाम है, क्या मूल्य है, कुछ पता नहीं। सुना था बाप को कहते हुए कि नाम लेना हो तो जीवन देना पड़ता है, तो बेचारी छोटी लड़की, इसको माफ भी कर सकते हैं हम। लेकिन बड़े-बड़े भी यही कर रहे हैं। किताबों में पढ़ लिया है, किसी को सुन लिया है और फिर लोगों को बता रहे हैं। बचना उनसे! तुम्हारा जीवन मूल्यवान है और किसी के हाथ में खिलौना मत बनने देना।

प्रेमा के लिए प्रेम ही मार्ग है। ध्यान में पड़ना ही मत। कम से कम बौद्ध ध्यानों में तो पड़ना ही मत। उनसे खतरा होगा, उनसे नुकसान होगा। आमतौर से जैन और बौद्ध ध्यान स्त्रियों को ठीक नहीं पड़ते--आमतौर से। ये दोनों ही मार्ग पुरुषों के मार्ग हैं।

इसलिए जैन-शास्त्र तो कहते हैं कि जैन-मार्ग से कोई स्त्री कभी मोक्ष को नहीं जाती। पहले उसे पुरुष-पर्याय में जन्म लेना पड़ेगा, तब मोक्ष जाएगी। पुरुष ही मोक्ष जाते हैं, स्त्रियां मोक्ष नहीं जातीं। स्त्रियां भी जाती हैं, मगर पहले उन्हें एक दफा आना पड़ेगा पुरुष होकर और फिर मोक्ष जाएंगी; सीधी स्त्री मोक्ष कभी नहीं जाती।

इसमें कारण है। इसका यह मतलब नहीं है कि सीधी स्त्री मोक्ष नहीं जाती है, मैं तुमसे कहता हूं, जाती है। मीरा गयी, सहजो गयी, दया गयी, लल्ला गयी, बहुत स्त्रियां गयीं, सीधी गयीं, कोई बीच में लौटकर आने की जरूरत नहीं पड़ी।

लेकिन जैन-मार्ग से कभी कोई स्त्री सीधी नहीं गयी, यह बात सच है। और मार्ग हैं जिनसे गयी।

और बुद्ध ने तो बहुत दिन तक स्त्रियों को दीक्षा ही नहीं दी थी। बहुत मुश्किल से दीक्षा दी। बड़ा विरोध किया बुद्ध ने कि नहीं, दीक्षा नहीं दूंगा स्त्रियों को। लेकिन फिर दबाव बहुत बढ़ने लगा, आखिर स्त्रियों को भी तो लगा कि इतने लोग, इतने पुरुष संन्यस्त हो रहे हैं, भिक्षु हो रहे हैं, ध्यान में जा रहे हैं, परम शांति को पा रहे हैं, स्त्रियों ने भी आखिर दबाव डाला।

बुद्ध की मां तो बचपन में मर गयी थी, पैदा होते ही से मर गयी थी, तो बुद्ध को पाला था उनकी सौतेली मां ने--प्रजापति ने। आखिर स्त्रियों ने प्रजापति को समझाया-बुझाया और कहा कि तुम चलो, तुम्हारी तो मानेगा। तो प्रजापति को लेकर स्त्रियां आयीं और प्रजापति ने प्रार्थना की, तो भी बुद्ध ने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, मैं स्त्रियों को दीक्षा नहीं दूंगा।

यह बात जरा ज्यादा हो गयी। तो बुद्ध के भिक्षुओं ने भी खड़े होकर प्रार्थना की, विशेषकर आनंद ने जो उनका प्रिय शिष्य था, उसने कहा कि नहीं प्रभो, अब यह ज्यादती हो रही है, आखिर स्त्रियों का क्या कसूर है! आखिर उनको भी तो परमात्मा चाहिए, उनको भी तो मोक्ष चाहिए, उनको भी तो शांति चाहिए, आप दया करें। जब बहुत दबाव डाला तो बुद्ध ने कहा--ठीक, मैं स्त्रियों को दीक्षा देता हूं, लेकिन मैं तुमसे कहे देता हूं, स्त्रियों के बिना मेरा धर्म पांच हजार साल चलता, अब केवल पांच सौ साल चलेगा।

यह भी खूब मजे की बात कही! मगर इसमें कारण हैं। बुद्ध की मौलिक शिक्षा पुरुष-चित्त के लिए है। पुरुष-चित्त हृदय की तरफ मुश्किल से डोलता है, बुद्धि की तरफ आसानी से डोलता है। स्त्री-चित्त हृदय की तरफ आसानी से डोलता है, बुद्धि की तरफ जरा कठिनाई से डोलता है।

तो बुद्ध ने ठीक ही कहा कि पांच सौ साल चलेगा मेरा धर्म--और पांच सौ साल भी नहीं चला, जल्दी ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया। क्योंकि जहां स्त्री आयी, प्रेम आया। जहां स्त्री आयी, मस्ती आयी। जहां स्त्री आयी, गुनगुनाहट आयी, नाच आया, घूंघर आए। वे बिचारे बुद्ध के भिक्षु जल्दी ही दिक्कत में पड़ गए। वे अड़चन में पड़ गए। वे दयनीय सिद्ध हुए।

पर मेरी स्थिति भिन्न है। मेरे लिए दोनों मार्ग एक जैसे हैं। इसलिए यहां स्त्री आए कि पुरुष आए, बराबर। और मैं कहता हूं, दोनों मोक्ष जा सकते हैं, जो जहां है वहीं से जा सकता है। यह मैं इसीलिए कह सकता हूं, कि मेरा किसी एक मार्ग पर कोई आग्रह नहीं है। मैं मार्ग को मूल्य ही नहीं देता, मेरा मूल्य तुम्हारे ऊपर है। मैं तुम्हें देखकर मार्ग तय करता हूं।

बुद्ध ने मार्ग तो तय कर लिया पहले। एक मार्ग तय कर लिया विपस्सना का, ध्यान का, अब देखा एक स्त्री आयी, अब वह जानते हैं कि स्त्री को यह जमेगा नहीं और मेरे मार्ग को स्त्री नहीं जमेगी, तो वह बचाव की कोशिश करते रहे। अगर बुद्ध स्वयं भी नारद के पास गए होते तो नारद भी कह देते कि महाशय, क्षमा करो, आप नहीं चलेंगे। आप किसी परशुराम को खोजो। पुरुष का यहां क्या काम? यहां वीणा बज रही है, यहां भजन गाया जा रहा है, यहां आपका नहीं चलेगा। आप ठहरे क्षत्रिय, आप कहीं और जाइए, जहां तलवार चलाने की सुविधा हो।

बुद्धि का मार्ग संघर्ष और संकल्प का मार्ग है। योद्धा का मार्ग है। हृदय का मार्ग गीत और गुंजन का। संकल्प का नहीं, संघर्ष का नहीं, समर्पण का, आस्था का, श्रद्धा का मार्ग है। मेरे लिए दोनों बराबर हैं। मैं तुम्हें देखता हूं कि तुम किस मार्ग से जा सकोगे। और यह भी तुमसे कह दूं कि ऐसा जरूरी नहीं है कि तुम पुरुष देह में हो, इसलिए सदा ही तुम्हें पुरुष का मार्ग जंचेगा। इससे कुछ बंधन नहीं है। कभी-कभी पुरुष-देह में बड़े कोमल हृदय होते हैं। और कभी-कभी स्त्री-देह में बड़े पुरुष हृदय होते हैं।

अब जैसे मैडम क्यूरी को नोबल प्राइज मिल सकती है। तो मैडम क्यूरी को नारद का मार्ग नहीं जंच सकता था, बुद्ध का जंचेगा। अब जिसको नोबल प्राइज मिली हो, जिसके पास गणित का ऐसा साफ-सुथरा मस्तिष्क हो, विचार की ऐसी क्षमता हो, इसको बुद्ध का मार्ग जमेगा। यह मीरा की तरह बावली होकर नाच न सकेगी। संभव नहीं।

अब रामकृष्ण हैं, पुरुष हैं, लेकिन फिर भी बुद्ध का मार्ग न जमेगा। इनके भीतर स्त्रैण हृदय है। तुम चकित होओगे यह जानकर कि रामकृष्ण इतने स्त्रैण थे, इतना नाच-गान, इतने गीत में लीन रहे कि उनके स्तन बड़े हो गए थे। और इतना ही नहीं, एक बार जब वह एक विशेष सखी-संप्रदाय की साधना कर रहे थे, तो उनको मासिक धर्म शुरू हो गया था, यह शायद तुमने सुना भी न हो। स्तन बड़े हो गए और मासिक धर्म शुरू हो गया था। और छह महीने तक जारी रहा। और स्तन तो उनके फिर जो बड़े हो गए तो, छोटे तो हो गए बाद में जब साधना उन्होंने बंद कर दी, लेकिन वे फिर भी कुछ तो बड़े रहे ही। तुम्हें रामकृष्ण की तस्वीरों से पता चल जाएगा। ऐसा हार्दिक चित्त था। मीरा जैसा ही कोमल।

तो इसलिए यह मत समझना कि पुरुष सभी पुरुष हैं और स्त्रियां सभी स्त्रियां हैं। इतना आसान होता मामला तो गुरु की कोई जरूरत ही नहीं थी। तब तो बात तय हो गयी। तब तो तुम्हारे बायलाजी से बात तय हो गयी। तुम्हारा स्त्री शरीर है, तुम्हारा पुरुष शरीर है, बात खतम हो गयी। पुरुष चले बुद्ध के मार्ग पर, स्त्रियां चली जाएं नारद के मार्ग पर, बात खतम हो गयी।

मगर इतना आसान नहीं है। बहुत पुरुष हैं जो स्त्रियों से भी ज्यादा कोमल हैं, जिनके हृदय में बड़ा काव्य है, बड़ा नृत्य छिपा है। इनको खोजना पड़ता है, इनको निकालना पड़ता है। बहुत सी स्त्रियां हैं जिनके भीतर बड़ी प्रखर बुद्धिमत्ता छिपी है, इनको भी निकालना पड़ता है, इनको भी खोजना पड़ता है।

-एस धम्मो सनंतनो-89

30 उदासीन नहीं, नाचती-गाती विपस्सना

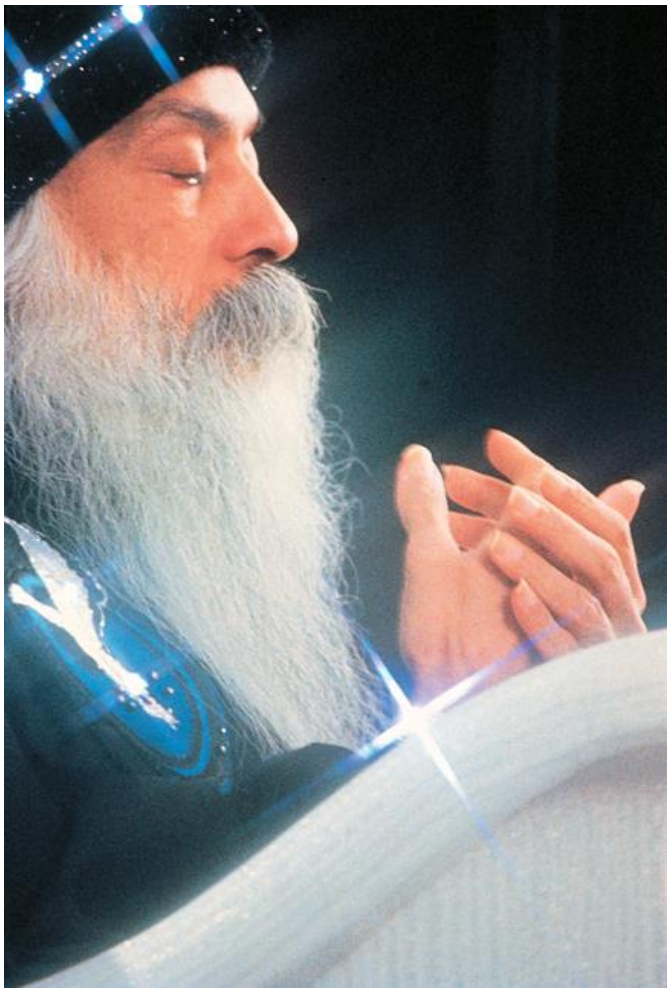

अति-विपश्यना से अनिद्रा व पागलपन संभव

दुनिया अधिक से अधिक ध्यान में रुचि ले रही है। वह दिन दूर नही, जब ध्यान 'परम-शिक्षा' का हिस्सा बन जाएगा। साधारण शिक्षा बाहर के जगत के बारे में है। ध्यान अपने अंतर्जगत की, भीतरी चेतना की शिक्षा होगी।

निश्चित ही इसमें थोड़ा समय लगेगा, क्योंकि संसार में कई धोखेबाज हैं; पाखंडी, झूठे मसीहा, तकनीशियन हैं। एक सच्चे ध्यानी और केवल ध्यान-विधि के जानकार के बीच अंतर को समझना जरूरी है। होगा वह कुशल तकनीशियन, किंतु स्वयं ध्यानी नहीं है।

उदाहरण के लिए, मैंने 'दुलारी' को यहाँ नहीं देखा। वह मेरी पुरानी सह-यात्रियों में से एक है। तो मैंने आज पूछा कि दुलारी को क्या हो गया? पता चला कि वह जिस आदमी के ध्यान शिविर में गई है, वह पहले बर्मा में एक व्यापारी था, वहां उसने विपश्यना की बर्मी पद्धति सीख ली। वह आदमी बिल्कुल नासमझ है। लेकिन वह तकनीक जानता है, इस बारे में कोई संदेह नहीं है।

बर्मी, सीलोनी, तिब्बती, चीनी, कोरियाई, जापानी; विपश्यना के कई रूप हैं। जापानी सबसे अच्छा है। लेकिन वे सभी विधियां गौतम बुद्ध से आई हैं। शायद बुद्ध ने कभी नहीं सोचा होगा कि कोई तकनीक सीखेगा और खुद ध्यान में नहीं डूबेगा। तकनीक अर्थात कैसे करना है, सिर्फ इसकी जानकारी।

अमेरिका छोड़ने के कुछ ही दिन पहले मैंने एक समाचार पत्र में इस आदमी, गोयनका का, मेरे बारे में बयान पढ़ा। मैं हैरान रह गया! उसने कहा कि मुझसे मिलकर मद्रास में कई घंटे उसने बात की। जबकि मैं केवल एक बार मद्रास गया हूं, करीब पच्चीस साल पहले; और मुझे अच्छी तरह याद है कि ऐसी कोई भी मुलाकात नहीं हुई, जिसमें विपश्यना के बारे में घंटों किसी के साथ चर्चा हुई हो। मैं तीन दिन के लिए मद्रास में था। वहां विपश्यना शब्द का उल्लेख भी नहीं हुआ था।

उस लेख को देखकर मुझे ख्याल आया कि यह आदमी ध्यानी नहीं हो सकता, जो इतनी आसानी से झूठ बोल सकता है। खबर मिली है कि शिविर के बाद दुलारी ने अपने घर में दस घंटे रोज ध्यान प्रयोग शुरु कर दिया है। दुलारी और उसके परिवार वालों को सतर्क होना चाहिए। उसके पति को पुलिस में रिपोर्ट की कर देना चाहिए, क्योंकि विशेष रूप से विपश्यना ध्यान, दो घंटे से अधिक नहीं किया जाना चाहिए। और वे दो घंटे भी सुबह के हों, सबसे अच्छा समय सूर्योदय से पहले है। दस घंटे विपश्यना की तो पूरी तरह से उसकी नींद खो जाएगी। और अंतिम परिणाम पागलपन होने वाला है।

एक भिक्षु सीलोन से मेरे पास भेजा गया। श्रीलंका एक बौद्ध देश है। वहां बौद्ध पुजारियों ने विपश्यना ध्यान सिखा दिया था। तकनीक बड़ी सरल है, लेकिन उपदेशकों ने खुद कभी नहीं की थी। वे खुद इसकी संभावनाओं, परिणामों, कठिनाइयों, समस्याओं के अनुभवों से नहीं गुजरे। इस तरह दूसरों को शिक्षा देना अपराध है।

उस बौद्ध भिक्षु की तीन साल से नींद खो गई थी, और हर उपचार किया गया, लेकिन कोई दवाएं सफल नहीं हुईं। उसके शिक्षक के कहा था, रात में विपश्यना करने के लिए। यह बिल्कुल ही गलत है। यहां तक कि अगर आप दिन में विपश्यना करते हैं, तब भी इसके प्रभाव रात तक जाएंगे; यही कारण है कि मैं सबसे दूर के बिंदु का सुझाव देता हूँ, सूर्योदय से पहले, सिर्फ दो घंटे पर्याप्त हैं। याद रखना, निश्चित मात्रा से अधिक अमृत भी जहर बन सकता है।

दस घंटे एक दिन के लिए विपश्यना किसी को भी विक्षिप्त कर सकती है। यही कारण है कि मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं, क्योंकि दुलारी पागल हो सकती है। वह बीस साल से मेरे साथ जुड़ी है। दस घंटे बहुत ज्यादा हैं। वे दबाव बन जाएंगे। वैसी तकनीक को बंद कर देना चाहिए। सर्वश्रेष्ठ समय है, सूर्योदय से पहले दो घंटे। वे स्वस्थ करेंगे और गहरी अंतर्दृष्टि व समझ लाएंगे।

गोयनका मात्र एक तकनीशियन है। और भी दुनिया में अनेक पाखंडी गुरु मौजूद हैं। चूंकि मानवता एक संकटकाल से गुजर रही है; जहां चेतना के नये आयाम की जरूरत आ पड़ी है, स्वाभाविक रूप से कई लोगों को झूठ-प्रचार का अवसर मिल जाएगा। यह भी संभव है कि विचार सही हों, लेकिन व्यक्ति जो उन्हें ला रहा है वह ठीक नहीं हो। तब भी विचार मानवता को नुकसान पहुँचाएगा।

ध्यान कोई यांत्रिक वस्तु नहीं है, इसलिए ध्यान का कोई तकनीशियन नहीं हो सकता है। गोयनका कुशल तकनीशियन है, वह जानता है कि वास्तव में विपश्यना की बर्मी शैली में क्या किया जाता है, लेकिन वह स्वयं ध्यानी साधक नहीं है।

उसने विपश्यना सिखाने को अपना पेशा बना लिया है, अब यह एक व्यवसाय है। वह अभी भी एक व्यापारी है। पहले वह बर्मा में एक व्यापारी था, अब सिर्फ बेचने की वस्तु बदल दी है। पहले कुछ और बेचता था, अब विपश्यना की तकनीक बेच रहा है।

-ओशो, ग्रेट पिलग्रिमेजः फार्म हियर टू हियर-7 से भावानुवादित

विपश्यना हृदय से दूर कर सकती है

प्रश्नः प्यारे सदगुरु, मैंने पिछले पांच वर्षों में अनेक सप्ताह धर्मगिरी में एकांतवास करते हुए विपश्यना ध्यान के अभ्यास मे गुजारे, जैसा कि श्रीं एस एन गोयनका द्वारा सिखाया जाता है। इस बीच मैंने अजीब तरह के दर्द, संदेह, दुख और बेचैनी का अनुभव किया। मैं बहुत थक चुका हूं। गहरी तड़प ने मेरे हृदय की संवेदनाओं से मुझे बहुत दूर कर दिया है। ध्यान विधि में मेरी रुचि ही खत्म हुई जा रही है। क्या इस प्रकार की ध्यान साधना आवश्यक है? क्या यह उपयोगी है? क्या केवल होश और उत्सव दिल की गहराई में प्रवेश करके अंधेरी रात को मिटा सकते हैं?

सागरेश, विपश्यना ध्यान गौतम बुद्ध द्वारा आविष्कार किया गया था, परम आनंद में डूबने के लिए; किंतु पच्चीस सदियों से बौद्ध खुद को विपश्यना द्वारा यातना दे रहे हैं।

विपश्यना गलत हाथों में गिर गया है।

मैं कभी नहीं मिला गोयनका से। लेकिन अपने एक साक्षात्कार में वह कहता है कि उसने मुझसे मद्रास में मुलाकात की। अपने पूरे जीवन में मैं मद्रास केवल एक बार गया हूं, और पूरी तरह से याद है, मैं किसी गोयनका से नहीं मिला। वह झूठ बोल रहा है। और उसकी धर्मगिरी यहाँ से बहुत दूर नहीं है। शायद पांच घंटे की ड्राइव- वह मुझसे मिलना चाहता है तो किसी भी दिन आ सकता है। लेकिन उसने हिम्मत नहीं की, क्योंकि मैं बहुत निर्दयी हूं। पाखंड का बेरहमी से पर्दाफाश करता हूं। उसने प्रेममय, सुखमय जीवन नहीं जिया है जिस संदर्भ में विपश्यना संभव है।

वह बर्मा से है। और चूंकि बर्मा एक बौद्ध देश है, हर कोई जानता है कि विपश्यना क्या है। जैसे पश्चिम में हर ईसाई, ईसाई प्रार्थना जानता है, वैसे ही हर बौद्ध विपश्यना जानता है। विपश्यना की तकनीकी व बौद्धिक जानकारी अलग बात है, अनुभूति बिल्कुल अलग बात है।

सागरेश, यह एक तरह से अच्छा था कि तुमने गोयनका द्वारा सिखाया विपश्यना ध्यान का अभ्यास किया। यह एक अच्छा सबक रहा। तुम कहते हो, 'मैंने अजीब तरह के दर्द, संदेह, दुख और बेचैनी का अनुभव किया। मैं बहुत थक चुका हूं।' तुम इसी के लायक हो। तुम वहाँ क्यों गए?

तुम कहते हो, 'गहरी तड़प ने मेरे हृदय की संवेदनाओं से मुझे बहुत दूर कर दिया है। ध्यान विधि में मेरी रुचि ही खत्म हुई जा रही है।' बहुत अच्छा। कम से कम जीवित बचे हो! मेरे कम्यून में कुछ दिनों के पोषण के कुछ ही दिन काफी होंगे, और सभी दर्द, दुख, सभी संदेह और थकान आदि गायब हो जाएंगे। जल्दी ही तुम नृत्य करोगे, और गायन में, आनन्द में डूबोगे।

लेकिन यह कटु अनुभव वास्तव में अच्छा रहा है। तुम्हें इसकी जरूरत है। अब मेरी ध्यान-व्यवस्था के औचित्य को देखने, समझने में आसानी होगी। तुम कह रहे हो कि ध्यान विधि में मेरी रुचि ही खत्म हुई जा रही है।

उन्होंने विपश्यना को रूखी-सूखी विधि बना दिया है।

धर्मगिरी में तुम्हारी रुचि खत्म होनी चाहिए, ना कि ध्यान साधना में। मगर अभी घाव ताजा है। थोड़ा इंतजार करो, और कुछ ही दिनों में तुम यहाँ पुनः विपश्यना का आनंद ले रहे होगे। लेकिन यहाँ विपश्यना एक रसपूर्ण अनुभव है, रूखा-सूखा नहीं है।

बौद्ध देशों में जिस प्रकार विपश्यना का अभ्यास किया जा रहा है मैं उसके खिलाफ हूं, और उसकी आलोचना करता हूं। उन्होने इस प; ति को अत्यंत शुष्क, रेगिस्तान की तरह बना दिया है। कोई फूल नहीं, कोई हरियाली नहीं; सब कुछ बस व्यवसाय की भांति है। मैं तुम्हें खेल के रूप में, गैर-गंभीर लीला के रूप में ध्यान सिखाना चाहता हूं।

तुम्हारा ध्यान, तुम्हारे प्रेम का पर्याय होना चाहिए। और यही तुम पूछ रहे हो कि 'मैं बहुत थक चुका हूं। गहरी तड़प ने मेरे हृदय की संवेदनाओं से मुझे बहुत दूर कर दिया है।'

यही तुम्हारी तड़प की वजह है। गोयनका ने तुम्हें भाव-जगत से दूर कर दिया है। क्योंकि हृदय के लिए कोई जगह नहीं है बौद्ध परंपरा में। सत्य को जानने का वह एक बहुत ही शुष्क मार्ग है।

गौतम बुद्ध ने कभी 'प्रेम' शब्द का उल्लेख तक नहीं किया। प्रेम से इतना डर है कि बीस साल के तक उन्होंने महिलाओं को अपने संघ में प्रवेश की अनुमति नहीं दी थी। क्योंकि स्त्रियां कुछ रस ले ही आएंगी, तुम जो भी करो, रेगिस्तान में कुछ फूल खिलने शुरू हो जाएंगे। रोकना असंभव है.. स्त्रियां हार्दिक हैं, पुरूष बौद्धिक हैं। स्त्रियां सीने में जीती हैं, पुरूष खोपड़ी में जीते हैं। महिलाओं को इंकार कर दिया तो फिर केवल सूखे खोपड़े रह गए- नारियल!

मेरे नजरिये में कभी किसी तरह का भेदभाव नहीं हैं- औरत या आदमी में। जो कोई भी सत्य के एक साधक हैं उनका स्वागत है। इसलिए यह एक पूरी तरह से अलग ढंग का कम्यून है। इस तरह के संघ पहले अस्तित्व में कभी नहीं रहे। यहाँ तुम गा सकते हो, और नृत्य कर सकते हो। यहाँ तुम प्यार में गिर सकते हो और प्यार के बाहर भी गिर सकते हो। इसमें कोई बुराई नहीं है।

यहां जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार किया जाता है। और इस पूर्ण स्वीकृति में जागरूकता पैदा होती है जो ध्यान में डूबने में सक्षम बनाती है। तब यह ध्यान गौतम बुद्ध की विपश्यना की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध हो जाता है। यह ध्यान; गीत, संगीत, नृत्य और जीवन के सभी आयामों में रचनात्मकता को नई गति दे सकता है।

-ओशो, हरि ओम तत्सत-28

31 योग और तंत्र में श्वास का प्रयोग एवं अन्य सवाल

-स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

प्रश्न-प्राचीन युग में तंत्र में और योग में भी श्वास पर बहुत महत्व दिया गया है। विपस्सना में भी श्वास पर कार्य किया जाता है। दुनिया भर में इस तरह के प्रयोग और विधियाँ प्रचलित हैं। अनापानसती और विपस्सना में क्या भेद है? कृपया समझाएं।

योग और तंत्र की धारणा में थोड़ा-सा भेद है। योग की विधियों में प्रयास पर जोर है और विज्ञान भैरव तंत्र की विधियों में निष्प्रयास पर जोर है। श्वास की विधियों का दोनों ने उपयोग किया। लेकिन योगिक और तांत्रिक सांस में थोड़ा-सा भेद हो गया। यौगिक सांस में हमारा प्रयत्न हैं। जबकि तांत्रिक श्वास की विधियों में प्रयत्नरहितता एर्फटलैसनेस हैं। इस सूक्ष्म भेद को समझना। शुरुआत करने के लिए यौगिक विधियाँ ज्यादा अच्छी हैं। लेकिन वहीं पर रूक नहीं जाना, ठहर नहीं जाना और आगे चलना हैं। आपको स्मरण दिलाऊँ पंतजलि ने अपने योगसूत्र में श्वास की विधियाँ गिनाते हुए कहा रेचक, पूरक, अंतर्कुम्भक, बहिर्कुम्भक और इसके अलावा एक विधि और हैं। उसकी चर्चा नहीं कि उसकी विधि कौन सी हैं। सिर्फ इतना ही कहा कि जो विधियाँ मैंने कहीं। इसके अलावा श्वास की एक विधि और हैं।

ओशो ने जब पंतजलि योग सूत्र पर प्रवचन दिए। तब उन्होंने वह रहस्य खोला कि पंतजलि किस तरफ इशारा कर रहे हैं। वे गौतम बुद्ध की विपस्सना विधि की तरफ इशारा कर रहे हैं। लेकिन नए साधक को उसके बारे में बताना ठीक नहीं। नए साधक के लिए यौगिक क्रियाओं से गुजरना, प्राणायाम के विभिन्न प्रयोग करना उचित है। वे ज्यादा आसान हैं। क्योंकि जहाँ से हम यात्रा शुरू कर रहे हैं वो कर्त्ता भाव की, अहंकार के तल पर हैं। तो कुछ करने से शुरू करना होगा। नहीं करने से शुरू करना बहुत मुश्किल है। करते-करते जब हम थक जाएंगे। तब स्वाभाविक रूप से एक दिन वह स्थिति बनेगी। जहाँ हम न करने में ठहर सकें और सुन सके जिस तरफ कबीर इशारा कर रहे हैं उस महाध्वनि को। वह श्वासों की आवाज से भी ज्यादा सूक्ष्म है। तो यौगिक श्वास की प्रक्रियाएँ नए साधक के लिए ज्यादा उपयोगी है। उसका लाभ है, शुरूआत करने में आसानी है। एक नुकसान है यदि कोई उनको ही पकड़ कर बैठ जाए और कभी निष्प्रयत्न हो ही नहीं, कभी विश्राम की भावदशा में पहुँचे ही नहीं। तब वही विधि उनके लिए बाधा बन जाएगी। इसलिए पंतजलि का इशारा याद रखना। उन्होंने कहा था कि इसके अतिरिक्त एक विधि और है। चूंकि वह कोई क्रिया नहीं है इसलिए उसकी तरफ केवल संकेत ही किया

जा सकता है। यदि कुछ कहो कि ऐसा करना है कि वैसा करना है तब वह क्रिया का हिस्सा हो जाएगी। इसलिए पंतजलि ने उसे छोड़ दिया। ठीक किया एक विधि और है। लेकिन उसकी चर्चा सम्भव नहीं। वह है निष्प्रयत्न भाव से, पूर्ण विश्राम भाव से, गहरे रिलेक्सेशन में आती-जाती श्वास को देखना और श्वास के भीतर के अन्तराल को देखना तो तंत्र की इन विधियों को भी समझें।

तंत्र में शिव ने पार्वती को नौ प्रकार की श्वास की विधियाँ कहीं। इन में छोटे-छोटे से भेद हैं कि किस बिन्दू पर ध्यान दिया जाए। तो श्वास की पहली विधि कहती है कि दो श्वासों के बीच में जागरुक होना बहुत सरल हैं। बाहर जाने वाली श्वास जब भीतर आना शुरू नहीं हुई उस समय और भीतर जाने वाली श्वास जब भीतर पहुँच गई और अभी बाहर लौटना शुरू नहीं हुई उस समय जागो यह पहली विधि है। दूसरी विधि है कि श्वासों के मोड़ के प्रति जागरूक बनो। श्वास भीतर गई। बाहर की तरफ मुड़ना शुरू हुई। फिर श्वास बाहर आ गई और भीतर की तरफ मुड़ना शुरू हुई। इन दोनों मोड़ों के प्रति सावधान बनो। अपनी चेतना को श्वास के मोड़ पर टिकाओ।

विज्ञान भैरव तंत्र की तीसरी विधि है- जब बहिर श्वास और अन्तर श्वास एक दूसरे में विलीन होते हैं। एक बार भीतर, एक बार बाहर। तब उस विलीन होने के प्रति जागरूक हो जाओ। छोटे-छोटे से सूक्ष्म भेद हैं। किसी साधक के लिए पहली विधि ज्यादा कारगर होगी। किसी साधक के लिए दूसरी विधि, किसी के लिए अन्य विधियाँ। तो करके देख लेना चाहिए। जो विधि हमको सुगम, आसान जान पड़ती है; वह विधि हमारे लिए है।

चौथी विधि है विज्ञान भैरव तंत्र कि कभी-कभार जब श्वास स्वतः ठहरी हुई है। उस समय ठहरी हुई श्वास के प्रति जाग जाओ। कभी किसी सुन्दर दृश्य को देखा कि रात चाँद को देख रहे थे और ठिठक गई श्वास कि सुबह सुन्दर सूर्योदय को देखा, कि एक मुस्कुराते हुए बच्चे को देखा और क्षण भर के लिए सांस लेना भूल गए। ऐसे क्षणों में, आश्चर्य विमुक्तता के क्षणों में इस ठहरी हुई श्वास के प्रति जागो। अब यहाँ पर भेद समझ सकते हैं। पंतजलि योग शास्त्र में कह रहे हैं कि श्वास को रोको भीतर श्वास को रोकना अन्तर्कुम्भक और बाहर सांस को रोकना बहिर्कुम्भक कहलाता है।

पंतजलि सलाह दे रहे हैं कि श्वास को रोको और शिव सलाह दे रहे हैं स्वतः आप अपने आप कभी जब श्वास ठहरी हुई तब जाग जाओ। दोनों में भेद हो गया। योग में प्रयास है। तंत्र में प्रयास नहीं है। लेकिन तंत्र से शुरू करना मुश्किल। यह घटना कब घटेगी, जब श्वास ठहरी होगी। ये तो कभी-कभार होगी। हो सकता है कभी महीने, दो महीने में एक क्षण के लिए घटे और उस समय जरूरी भी नहीं कि तुम उसका स्मरण भी रख पाओ। लेकिन पंतजलि की विधि कभी भी की जा सकती है। अभी इसी क्षण। क्षण भर को भीतर श्वास रोक लें कि क्षण भर को हम बाहर श्वास रोक लें, कि क्षण भर को मध्य में भी श्वास रोक लें। इसलिए मैंने कहा कि पंतजलि के योग साधना से शुरू करना सरल है। लेकिन अन्ततः हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हम उस विधि से भी मुक्त हो जाएं और सहज रूप से, स्वाभाविक और प्राकृतिक ढंग से जैसी श्वास चल रही है उसके विभिन्न बिन्दुओं के प्रति जागरुक होना हम शुरू हों। तब जाकर साधना पूरी होगी।

पांचवी तंत्र की विधि है कि भृकुटियों के मध्य में आज्ञा चक्र पर प्राण तत्व को टिकाओ। महावीर ने और कृष्ण ने भी इस भांति की विधि को सराहा है। आज्ञा चक्र पर ध्यान रखते हुए श्वास को सम कर लो। ध्यान हो आज्ञा चक्र पर और श्वास सम हो जाए। सम अवस्था में श्वास करीब-करीब ठहरी हुई होती है। या बहुत धीमी चलती है, इतनी धीमी कि पता भी नहीं चलता श्वास चल रही है अथवा नहीं चल रही। सुषुमना नाड़ी से श्वास चलती है। उस समय यदि आज्ञा चक्र पर ध्यान है तो यह विज्ञान भैरव तंत्र की पांचवी विधि हुई।

छठवीं विधि है कि अपने सांसारिक काम-काज करते हुए, कामों में व्यस्त रहते हुए श्वास के अन्तराल पर जोर दो। श्वास के अन्तराल को देखो। एक साधारण गृहस्थ व्यक्ति जो अलग से ध्यान के लिए समय नहीं निकाल पाता। उसके लिए भी उपाय भगवान शिव ने बताया कि अपने सांसारिक काम धाम करते हुए अपनी श्वास के अन्तराल को देखो।

कहे कबीर सुनो भई साधो।

सब सांसों की सांस में।

सातवीं विधि शिव कहते हैं। ललाट में मध्य में प्राण तत्त्व को टिकाओ और उस श्वास को देखो। श्वास के साथ जो प्राण ऊर्जा, वाइटल फोर्स भीतर जा रहा है। भाव करो कि वह ललाट की तरफ जा रहा है। इन दोनों में सूक्ष्म भेद हैं- भृकुटी मध्य में और ललाट मध्य में ध्यान को केन्द्रित करने में। ललाट पर ध्यान देना ज्यादा विश्रामदायी है। भृकुटी मध्य में ध्यान केन्द्रित करने से तनाव पैदा होता है। मैं आपको सलाह दूँगा। यदि इन दोनों में से आपको चुनना हो तो ललाट मध्य वाली विधि ज्यादा आसान है। उसमें हम ज्यादा विश्रामपूर्ण हो सकते हैं।

आठवीं विधि कहते है शिव कि भक्तिपूर्वक श्वास को लो। श्वास केवल हठयोग की ही विधि नहीं है। बल्कि भक्ति का भी साधन बन सकती है। श्वास को ऐसे लो जैसे तुम कोई पूजा का कृत्य कर रहे हो। और सच पूछो तो यह बात ठीक है। यह शरीर हमारा मंदिर है और भीतर ब्रह्म विराजमान है। श्वास जब हम ले रहे हैं तो हम भीतर के परमात्मा को जीवन ऊर्जा अर्पित कर रहे हैं। इससे बड़ी पूजा क्या होगी? अर्चना क्या होगी? तो शिव कहते हैं श्वास को इस भांति से लो प्रेम भाव से भरके, श्रद्धा भाव से भरके, भक्ति भाव से भरके, अपने ही प्रति अहोभाव से भरके। अपने शरीर को मन्दिर जानते हुए और अपने भीतर के चैतन्य को ब्रह्म का अंश समझते हुए अर्चना का एक कृत्य तुम कर रहे हो। इस भाव से श्वास को लो। इस रूप से लेने पर श्वास की यह विधि भक्ति की एक गहन विधि हो जाती है।

और नोवीं विधि, अन्तिम विधि में शिव कहते हैं कि कभी मृतवत लेटे रहो या अचानक ठहर जाओ और स्थिर आँखों से कुछ देखो, एकटक देखो या अपने आप जब ऐसा हो रहा हो कि तुम एकटक कहीं देख रहे हो, कि मृतवत लेटे हुए हो। बिल्कुल रिलैक्सड़, उस समय श्वास पर ध्यान दो। अक्सर उस समय श्वास भी ठहर जाती है। दो सांसों की सांस में वह शुभ मुहुर्त आ गया। जहां दो श्वासों के बीच का अन्तराल उजागर हो गया। उस अंतराल को देखो।

तो यौगिक और तांत्रिक विधियों में यह एक भेद हुआ। तांत्रिक विधियाँ प्रयास पर जोर नहीं देती। प्राकृतिक घटना क्रम में अपने आप जो हो रहा है। श्वास का जाना, मुड़ना, ठहरना, वापिस आना और जीवन के संसार के काम करते हुए इनके अन्तराल को देखना। ये तांत्रिक विधियाँ हैं और विधिपूर्वक, प्रयत्नपूर्वक भीतर जाती श्वास यानि पूरक, बाहर जाती श्वास यानि रेचक। अन्तर्कुम्भक या बहिर्कुम्भक यदि हमने इन्हें साधा तो वह पंतजलि की साधना पद्धति का हिस्सा हो गई।

आगे आपने पूछा है कि अनापानसती योग और विपस्सना में क्या भेद है?

विपस्सना एक ब्रोड टर्म है। विपस्सना का मतलब होता है साक्षी होना, देखना, दृष्टा होना। किस चीज के हम साक्षी हैं, ये उसमें इनक्लुडिड नहीं हैं। बुद्ध कहते थे अपने भिक्षुओं से कि भिक्षुओं इहि पस्सिको। आओ और देखो। विपस्सना शब्द संस्कृत की पश्य धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ है देखना, टू सी। क्या देखना इस तरफ इशारा नहीं है। तो विपस्सना के कई प्रकार हो सकते हैं। क्रियाएं करते हुए अपने चलाएमान शरीर को देखना। चलते हुए, ऊपर जाते कदम, नीचे जाते कदम। जमीन का स्पर्श, दूसरे कदम का उठना। इसको देखना। इसको गौतम बुद्ध ने चक्रमण ध्यान कहा। चलते हुए ध्यान करना, मन के भीतर अपने विचारों को देखना, कि अपने मन की हृदय की भावनाओं को देखना कि अपनी सांसों को देखना। ये सभी कुछ विपस्सना कहलाएगा। विपस्सना का अर्थ है देखना। क्या देखना, इस तरफ इशारा नहीं है।

लेकिन अनापानसतीयोग विपस्सना का एक खास टाईप है। अनापानसती योग का अर्थ हुआ आती-जाती श्वास को देखना। इसमें विचारों को देखना, भावनाओं को देखना, शरीर की क्रियाओं को देखना; ये नहीं है। प्राण शब्द संस्कृत का पाली भाषा में पान कहलाता था। बुद्ध पाली भाषा का उपयोग करते थे। तो पान का अर्थ है भीतर जाती श्वास और आपान का अर्थ है बाहर आती श्वास। पान आपान दोनों मिलकर अनापान कहलाए, आती-जाती श्वास। इन्सीपिरेशन एण्ड एक्सपीरेशन। सती का अर्थ है स्मृति। जैसे समासति, सम्यक स्मृति। अनापानसती यानि आती-जाती श्वासों का स्मरण और योग का अर्थ है परमात्मा से जुड़ना तो आती-जाती श्वास के माध्यम से उसका स्मरण रखते हुए धीरे-धीरे परमात्मा से जुड़ना। ये कहलाया अनापानसती योग। तो विपस्सना एक ब्रॉड टर्म है और अनापानसती

योग एक खास टाइप की विपस्सना है। लेकिन कालान्तर में श्वास की प्रक्रिया को ही विपस्सना कहने लगे। क्योंकि वही सर्वाधिक प्रचलित हुआ।

प्रश्न- प्राचीन समय में विपस्सना ध्यान खोजियों के लिए सम्बुद्ध होने का राज मार्ग रही। लेकिन श्वास तो बाहर की ही एक चीज हैं। वह शरीर का ही कंपन हैं। वह अंतयात्रा में किस भांति सहयोगी हो सकती हैं?

श्वास मध्य में है। न बाहर है, न भीतर है। भीतर है चेतना, बाहर है शरीर और दोनों के मध्य में जोड़ सेतु की तरह है श्वास। पदार्थ से परमात्मा की तरफ जाने के लिए, शरीर से आत्मा की तरफ जाने के लिए। श्वास एक पुल का काम करती है। शरीर एक किनारा है, आत्मा दूसरा किनारा है और इस नदी के ऊपर श्वास का पुल है। यह मध्य में है और इसलिए बुद्ध ने विपस्सना पर इतना जोर दिया। क्योंकि वे मध्यम मार्ग के प्रवर्तक है। वे कहते हैं : 'दि गोल्डन मीन' मज्झिम निकाय। ठीक बीच में चलो। न तो पदार्थवादी हो जाओ, न आत्मवादी हो जाओ। श्वास के प्रति जागरूक होओ। श्वास का एक छोर पदार्थ है। श्वास का दूसरा छोर चैतन्य है। इसलिए श्वास को मैं बाहर की नहीं कहूँगा। श्वास बाहर और भीतर का जोड़ है। इसलिए तो बार-बार फिर बाहर जाती फिर भीतर आती, फिर बाहर जाती, फिर भीतर आती। वह न बाहर की है, वह न भीतर की है। वह दोनों के मध्य की है। जिस व्यक्ति ने मध्य का भी मध्य खोज लिया 'सब सांसों की सांस में' उसके लिए चमत्कार घट जाता है और यही कारण है कि प्राचीन समय से ही विपस्सना ध्यान खोजियों के लिए राजमार्ग रही, आज भी है, आगे भी रहेगी।

प्रश्न- गणेश जी की इतनी लम्बी सूंड, विराट तौंद और फिर चूहे की सवारी का क्या राज है?

यह एक प्यारा प्रतीक है। गणेश की सूंड प्रतीक है धीमी, गहरी श्वास की लम्बी नाक। पुराने मूर्तिकारों ने मूर्ति में कैसे इस बात को खोदे, जिसे शास्त्र न पढ़ने वाले लोग भी समझ सकें। जिनको भाषा नहीं आती, वे भी समझ जाएं कि क्या करना है? बड़ी सीधी सी बात करनी है। जब लम्बी सूंड होती है, उसमें श्वास की मात्रा, हवा की मात्रा वही की वही बार-बार भीतर जाती है, लम्बी सूंड होने की वजह से। छोटी नाक होने से अधिकांश श्वास हमारी बाहर निकल जाती है। और नई श्वास, नई हवा हमेशा भीतर जाती है। यदि शांत होना हो, थोड़ी धीमी श्वास जरूरी है। इसलिए गणेश जी की सूंड़ प्रतीक है।

ऐसा कभी हुआ नहीं होगा कि आदमी का सिर काटकर हाथी का सिर जोड़ दिया होगा। यह तो एक कहानी है। लेकिन प्रतीक रूप में बड़ी सुन्दर कहानी है कि धीमी गहरी श्वास। आपने ख्याल किया होगा जो लोग कंबल या रजाई ओड़कर सोते हैं सर्दियों के दिनों में, वे ज्यादा गहरी नींद सोते हैं। क्यों? क्योंकि रजाई या कंबल के भीतर की श्वास वही की वही श्वास जिसमें कार्बन डाई आक्साइड़ की मात्रा बढ़ती जा रही है और बार-बार वही सांस भीतर जाती है। तब मन ज्यादा विश्रांति को उपलब्ध होता है। सुबह होती है आक्सीजन की मात्रा बढ़ने लगती है, वायु मण्डल में और हम सक्रिय होने लगते हैं। हम कर्मठ होने लगते हैं। हम तनावग्रस्त होने लगते हैं। दिन भर सारे आपाधापी और तनाव, रात को फिर हम विश्राम में चले जाते हैं। नींद में चले जाते हैं। उसका कारण है कि शाम को पेड़-पौधे सो गए। सूरज ढल गया। प्रकाश संश्लेषण, फोटो सिन्थेसिस की प्रक्रिया बन्द हो गई। कार्बन डाई-आक्साइड की मात्रा बढ़ने लगी। पेड़-पौधे ही नहीं सो गए बल्कि जानवर भी सोने लगे हैं, मनुष्य भी सोने लगे हैं। मन विश्रांति को उपलब्ध हुआ। दिन में इतना शांत होना, इतनी गहराई तक शांत होना संभव नहीं है। आक्सीजन और कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा बड़ा फर्क डालते हैं। इसको हम छोटा-सा ध्यान

का प्रयोग भी बना सकते हैं। एक सूंड की आकृति, एक कागज का एक या प्लास्टिक का सूंड बना लें। छः इंच लम्बी या एक फुट लम्बी। मास्क के समान लगा ले और उसके अन्दर आप श्वास लें। तो हर बार करीब-करीब उसमें से एक-चौथाई ताजी हवा भीतर आए और तीन-चौथाई हवा वही की वही रहे। इस प्रकार का एक प्रयोग किया जाए। मन बहुत ही जल्दी विश्राम को उपलब्ध हो जाता है।

गणेश की विराट तौंद प्रतीक है- अन्तर्कम्भक का। पेट फुला हुआ है और श्वास भीतर भरी हुई है और श्वास को भीतर रोक लिया है। अन्तर्कुम्भक की अवस्था में इस धीमी गहरी श्वास को लेते हुए ध्यान को उपलब्ध हो सकता है और गणेश जी की सवारी और छोटा सा चूहा वह भी प्रतीक है कि जो व्यक्ति इस प्रकार धीमी गहरी श्वास लेते हुए अन्तर्कुम्भक साधेगा वह भारहीन हो जायेगा। इसलिए गणेश जी एक छोटे से चूहे पर सवार हो जाते हैं। इतना भारी भरकम शरीर देखने में किन्तु उनका कोई भार नहीं है। यहाँ सुरति समाधि के अन्तिम दिन हम प्रयोग कराते हैं भार हीनता का। जिसमें कुर्सी पर बैठे एक व्यक्ति को चार लोग एक-एक उंगली लगाकर ऊपर हवा में उठा लेते हैं और ऐसा लगता है कि जैसे वह सत्तर किलो का, अस्सी किलो का व्यक्ति मुश्किल से चार या पांच किलो का हो गया हो। इतना कम वजन हो जाता है। श्वास की एक विशेष अवस्था में, ध्यान की एक विशेष अवस्था में; एक छोटा सा चूहा, गणेश जी की सवारी इस बात का प्रतीक है कि गणेश जी देखने में तो भारी-भरकम लेकिन भार उनका बिल्कुल नहीं है। वे शरीर रूप नहीं, पदार्थ रूप नहीं वे चैतन्य मात्र हैं।

प्रश्न- यह तानदेन विधि क्या है? यह कितनी दूर तक समाधि में ले जाने में सहयोगी हो सकती है?

तानदेन विधि चीन में संत लाओत्सु ने खोजी। यह मूलबंध का ही एक सूक्ष्म प्रकार है। मूलबंध में बहुत जोर देकर श्वास को रोका जाता है। तानदेन में बहुत सहज रूप से निष्प्रयत्न होकर छोटा-सा, हल्का-सा झटका दिया जाता है। बाहर जाती श्वास पर। धीमी गहरी श्वास ली जाती है। श्वास मणिपुर चक्र से भी नीचे स्वादिष्ठान चक्र तक जिसे जापान और चीन में हारा केन्द्र कहते हैं, वहां तक श्वास जानी चाहिए और बाहर जाती श्वास पर एक छोटा-सा हल्का-सा झटका। यह तानदेन विधि मूलबंध विधि से भी ज्यादा आसान है। इसे सामान्य काम-धाम करते हुए दिन में कई बार किया जा सकता है और यह समाधि में ले जाने में बहुत-बहुत सहयोगी हो सकती है।